

खण्ड 3  
पातञ्जल योगसूत्र : साधनपाद  
तथा विभूतिपाद



---

## इकाई 13 प्रत्याहार का स्वरूप एवं इन्द्रिय वशीकरण विवेचन

---

### इकाई की रूपरेखा

- 13.0 उद्देश्य
- 13.1 प्रस्तावना
- 13.2 प्रत्याहार का अर्थ एवं स्वरूप
- 13.3 प्रत्याहार का लक्षण
- 13.4 प्रत्याहार का प्रकार
- 13.5 प्रत्याहार के साधन
- 13.6 प्रत्याहार का फल इन्द्रिय वशीकरण के उपाय
- 13.7 सारांश
- 13.8 शब्दावली
- 13.9 कुछ उपयोगी पुस्तकें
- 13.10 अभ्यास प्रश्न/उत्तर

---

### 13.0 उद्देश्य

---

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप—

- प्रत्याहार का अर्थ एवं स्वरूपको जान सकेंगे।
- प्रत्याहार का लक्षण एवं प्रकार को जान सकेंगे।
- प्रत्याहार की उपयोगिता को जान सकेंगे।
- इन्द्रिय वशीकरण के उपाय को जान सकेंगे।
- प्रयुक्त तकनीकी शब्दावली को जान सकेंगे।

---

### 13.1 प्रस्तावना

---

महर्षि पतंजलि ने अपने ग्रन्थ योग दर्शन में वर्णित अष्टांग योग में पाँचवाँ अंग प्रत्याहार को बताया है। अष्टांग योग में पाँच यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार ये बहिरंग साधन हैं। इन साधनों में सभी क्रियाएँ शरीर द्वारा की जाती हैं। इसके बाद शरीर द्वारा की जाने वाली क्रियाएँ समाप्त होकर साधक अक्रिया के मार्ग पर चला जाता है। जिसमें अंतरंग साधना धारणा, ध्यान, समाधि है। इस प्रकार अष्टांग योग के पाँचवे साधन प्रत्याहार इन्द्रियों के माध्यम से मन को नियंत्रित करने की प्रक्रिया है। पूर्वोक्त साधन प्राणायाम जब सिद्ध हो जाता है तभी मन स्थिर होने लगता है। मन के स्थिर होने पर विषयों का चिन्तन छूट जाता है तथा मन धारणा के योग्य बन जाता है। जिससे इन्द्रियों की वाह्य वृत्तियाँ अपने आप छूट जाती हैं तथा चित्त में विलीन हो जाती हैं तथा इन वृत्तियों का विषयों की ओर भागना बंद हो जाता है। उस प्रत्याहार की सिद्ध होने से इन्द्रियों की उत्कृष्ट वश्यता होती है अर्थात् इन्द्रियाँ पूर्ण रूपेण वश में आ जाती हैं। इस प्रकार **इकाई—13 प्रत्याहार का स्वरूप एवं इन्द्रिय**

वशीकरण विवेचन के अन्तर्गत प्रत्याहार का अर्थ एवं स्वरूप, लक्षण एवं प्रकार, एवं उसका फल तथा इन्द्रिय वशीकरण एवं उसके उपाय का वर्णन किया जायेगा।

### 13.2 प्रत्याहार का अर्थ एवं स्वरूप

प्रत्याहार में 'प्रति' शब्द का अर्थ 'विपरीत' तथा 'आहार' शब्द का अर्थ 'विषय' है। इस प्रकार प्रत्याहार का शाब्दिक अर्थ इन्द्रियों द्वारा अपने विषयों को ग्रहण ना करना तथा उन्हें लौटा देना। जब साधक इन्द्रियों के विषयों को त्यागकर चित्त को अपने ध्येय में लगा देता है, तब इन्द्रियाँ अपने विषयों की ओर आकृष्ट होकर चित्त में विलीन सी हो जाती हैं। इसे ही प्रत्याहार कहा गया है। प्रत्याहार में यह स्थिति तब सम्भव है जब इन्द्रियाँ चित्त के अनुसार कार्य करने लगें, इसके लिए मन का निग्रह करना आवश्यक है। 'इन्द्रियाणि विषयेभ्यः प्रत्याह्वयन्ते विमुखीक्रियन्तेऽनेनेति प्रत्याहारः' अर्थात् इन्द्रियों को उनके विषयों से हटाकर अन्तर्मुखी बना लेना प्रत्याहार है। व्यासभाष्य में कहा गया है कि—

यथा मधुकरराजं मक्षिका उत्पतन्तमनूत्पतन्ति, निविषमानमनु निविषन्ते।  
तथेन्द्रियाणि चित्तनिरोधे निरुद्धानि, इत्येष प्रत्याहारः॥ (व्यास भाष्य, 2/54)

अर्थात् जैसे मधु बनाने वाली रानी मक्खी के बैठने के साथ-साथ बैठती हैं, और रानी मक्खी के उड़ने पर अन्य मक्खियाँ उड़ जाती हैं। ऐसे ही इन्द्रियाँ भी चित्त निरोध हो जाने पर निरुद्ध हो जाती हैं। यह प्रत्याहार की सिद्धि का लक्षण है।

कहने का आशय यह है कि चित्त जब बाहर के विषयों से विरक्त होता है, तथा समाहित होने लगता है, तब इन्द्रियाँ अन्तर्मुखी हो जाती हैं तथा उसी के अनुरूप आचरण करती हैं, यही प्रत्याहार है। दूसरे शब्दों में प्रत्याहार वह स्थिति है जब विषयों के चिन्तन से मन को हटा दिया जाए तथा मन को संकल्पशून्य बना दिया जाए अर्थात् मन में या चित्त में जो भी विचार उठें उन विचारों को बलपूर्वक हटा देना जैसे जो भी नकारात्मक विचार या विषय इन्द्रियों को बहिर्मुखी बना रहे हैं तो उन्हें बलपूर्वक सकारात्मक विचारों से हटा दिया जाए। यदि हम सकारात्मक विचारों को ग्रहण करें तो विवेक ज्ञान द्वारा हम इन्द्रियों को संयमित बना सकते हैं, इसके लिए अभ्यास की आवश्यकता होती है। जैसे जो खाने लायक हो उसे ही खाया जाए ना कि जो कुछ भी देखा या मिला उसे ही खा लिया जाए, जो सुनने लायक हो उसे सुना जाए, इसी तरह जो देखने लायक हो उसे देखा जाए, इसी प्रकार इन्द्रियों के अन्य विषयों पर भी नियन्त्रण किया जा सकता है। इस प्रकार हमारी इन्द्रियाँ सकारात्मक वृत्तियों के प्रवाह होते रहने से संयमित हो जाती हैं। तथा अपने आहार से विमुख हो इश्वरोन्मुख हो जाती हैं तथा अन्तर्मुखी हो जाती हैं।

इसी मत को स्पष्ट करते हुए भगवान श्रीकृष्ण ने श्रीमद्भगवद्गीता के छठे अध्याय में कहा है कि—

‘यतो यतो निश्चरति मनस्चञ्चलमस्थिरम्।  
ततस्ततो नियम्यैतदात्मन्येव वर्षं नयेत्।’

(गीता 6/26)

अर्थात् स्थिर न रहने वाला चंचल मन जिन-जिन विषयों में रमण करता है, उस-उस विषय से मन को हटाकर बार-बार परमात्मा के चिन्तन में ही लगाते रहना चाहिए। इसके पश्चात् श्रीकृष्ण ने स्वयं कहा है कि—

‘यत्करोषि यदश्नासि यज्जुहोसि ददादि यत्।  
यत्तपस्यसि कौन्तेय ! तत्कुरुष्व मदर्पणम्।।’

प्रत्याहार का स्वरूप  
एवं इन्द्रिय वशीकरण  
विवेचन

(गीता 9/27)

अर्थात् हे अर्जुन! तू जो भी कर्म करता है, जो भी कुछ खाता है, जो हवन करता है समर्पण करता है, जो दान देता है और स्वधर्म के पालनरूप जो भी तप करता है, वह सब मुझ परमात्मा को अर्पण कर दे।

महर्षि पतंजलि ने प्रत्याहार के बारे में कहा है कि—‘स्वविषयासम्प्रयोगे चित्तस्वरूपानुकार इवेन्द्रियाणां प्रत्याहारः’ (पातंजलयोगसूत्र, 2/54) अर्थात् इन्द्रियों का जब स्व विषयों से सम्बन्ध नहीं रहता है, तब उनका चित्त के स्वरूप में तदाकार सा हो जाना प्रत्याहार कहलाता है। प्रत्याहार का सम्बन्ध विशेष रूप से इन्द्रियों से है, तथा इन्द्रियों के विषयों से है। इन्द्रियों पर जितना अधिकार होता जाता है, मन तथा बुद्धि प्रभावित होती जाती है तथा इन्द्रियों पर पूर्ण नियन्त्रण प्राप्त कर साधक समाधि की प्राप्ति कर सकता है। प्रत्याहार सिद्ध होने पर इन्द्रियाँ व मन स्थूल व सूक्ष्म विषयों की ओर बिना प्रयोजन आकृष्ट नहीं होती हैं। प्रत्याहार के बाद साधक को यह उपलब्धि प्राप्त होती है कि साधक का विषयों के प्रति आसक्ति का त्याग हो जाता है। साधक में मानसिक परिवर्तन आने लगते हैं। प्रत्याहार सिद्ध होने पर मन अधिक शक्तिशाली हो जाता है तथा मन पर नियन्त्रण हो जाता है तथा इस शक्तिशाली मन को चित्त को प्रत्याहार के बाद किसी एक जगह ठहराने की बात महर्षि पतंजलि ने कहा है कि इसके बाद धारणा, ध्यान, समाधि के साधनों, जो कि अंतरंग साधन में है प्रवेश कर अपने मन को चित्त में तथा चित्त को अपने कारण तत्व में विलीन कर कैवल्य प्राप्त किया जा सकता है।

### 13.3 प्रत्याहार का लक्षण

पतंजलि के मत में योग दर्शन में प्रत्याहार का लक्षण करते हुए महर्षि पतंजलि ने इस प्रकार लिखा है कि—‘स्वविषयासम्प्रयोगे चित्तस्वरूपानुकार इवेन्द्रियाणां प्रत्याहारः।’ (पातंजलयोगसूत्र, 2/54) अर्थात् जब इन्द्रियों का स्व-विषयों से सम्बन्ध नहीं रहता तब उनका चित्त के स्वरूप में तदाकार सा हो जाना ‘प्रत्याहार’ है।

व्यास के मत में इन्द्रियगण भी चित्त निरोध होने पर निरुद्ध होती हैं, यही प्रत्याहार है।

विज्ञानभिक्षु के मत में इन्द्रियों का निग्रह करना अर्थात् उन्हें वश में करके अपनी इच्छानुसार उनसे कार्य लेना ही प्रत्याहार है।

घेरण्ड संहिता के मत में

यतो—यतोनिस्वरति मनस्वंचलमस्थिरम्।

ततस्ततो नियम्यैतदात्मन्येव वशं नयेत्।।

(घेरण्ड संहिता, 4/2)

अर्थात् जहाँ—जहाँ मन विचरण करे, इसे वहीं से लौटाने का प्रयत्न करते हुए आत्मा को वश में करें।

विष्णु पुराणके मत में—योगविदों को चाहिए कि वह शब्दादि विषयों में आसक्त इन्द्रियों का निग्रह और अपने-अपने विषयों से निरुद्ध इन्द्रियों को चित्त का अनुकरण करने वाला बनायें यही अभ्यास प्रत्याहार का रूप धारण कर लेता है।

स्वामी विवेकानन्द के मत में—यदि तुम चित्त को विभिन्न आकृतियाँ धारण करने से रोक सको, तभी तुम्हारा मन शान्त होगा और इन्द्रियाँ भी मन के अनुरूप हो जाएँगी। इसी को प्रत्याहार कहते हैं।

### 13.4 प्रत्याहार का प्रकार

महर्षि पतंजलि कृत योगदर्शन में प्रत्याहार के प्रकार को स्पष्ट नहीं किया गया किन्तु **जाबालदर्शनोपनिषद्** में प्रत्याहार के प्रकार बताये गये हैं जिसमें प्रथम प्रकार के प्रत्याहार के बारे में कहा है कि—

**‘इन्द्रियाणां विचरतां विषयेषु स्वभावतः।**

**बलादाहरणं तेषां प्रत्याहारः स उच्यते।।’**

अर्थात् उन इन्द्रियों को जो स्वभाव से विषयों में विचरण करने वाली हैं, उन्हें बलपूर्वक वहाँ से लौटा लाने को प्रत्याहार कहा है। पहले प्रकार का प्रत्याहार अर्थात् इन्द्रियों को बलात् सजातीय (सकारात्मक) वृत्तियों की ओर लौटा लाना एक प्रकार का प्रत्याहार है। इसके अतिरिक्त द्वितीय प्रकार के प्रत्याहार के बारे में कहा गया है कि—

**‘यत्यस्यति तु तत्सर्वं ब्रह्म पश्यन् समाहितः।**

**प्रत्याहारो भवेदेषः ब्रह्मविदिभः पुरोहितः।।’**

अर्थात् हमें जो भी दिखाई दे रहा है, वह ब्रह्ममय है, ऐसी भावना करते हुए परब्रह्म (परमात्मा) में मन को एकाग्र कर लेना ही ब्रह्मवादियों के अनुसार प्रत्याहार कहा गया है। इसके अतिरिक्त तृतीय प्रकार के प्रत्याहार के बारे में कहा गया है कि—

**‘यच्छुद्धमशुद्धं वा करोत्यामरणान्तिकम्।**

**तत्सर्वं ब्राह्मणे कुर्यात्प्रत्याहारः स उच्यते।।’**

अर्थात् मनुष्य मृत्युपर्यन्त जो भी शुद्ध या अशुद्ध कर्मों को करता है, वह उन सभी कर्मों को ईश्वर को समर्पित कर दे, यह भी प्रत्याहार ही कहा जाता है। जबालदर्शनोपनिषद् में भगवान् दत्तात्रेय जी द्वारा तीन प्रकार का प्रत्याहार का वर्णन किया गया है। जिसमें प्रथम प्रकार के प्रत्याहार में स्वभाववश विषयों में रमण करने वाली इन्द्रियों को बलपूर्वक उनके विषयों से अभिमुख कर लौटा लाना ही प्रत्याहार है। इसी प्रकार दूसरे प्रकार का प्रत्याहार वेन्दान्तवादियों का प्रत्याहार कहा जा सकता है कि समस्त जगत को ब्रह्ममय देखो, तथा सभी जगह इसी परम् ब्रह्म परमेश्वर की सत्ता है। **‘एकोब्रह्मद्वितीयोनास्ति’** इसी प्रकार इसी परम् ब्रह्म परमात्मा में दृष्टि एकाग्र कर लेना ब्रह्मवादियों का प्रत्याहार है। तीसरे प्रकार का प्रत्याहार मनुष्य जो भी कर्म करें, उसे उसमें अपने कर्तव्य कर्मों का भान हो, अपने कर्मों को करते हुए सभी कर्मों को परमेश्वर को समर्पित करे दे, यह तीसरे प्रकार का प्रत्याहार है। यह प्रत्याहार अन्तर्जगत में प्रवेश का प्रमुख साधन है। प्रत्याहार के सिद्ध हो जाने पर इन्द्रियजन्य की प्राप्ति होती है तथा साधक धारणा, ध्यान, समाधि रूप अंतरंग योग में प्रवेश पा सकता है।

### 13.5 प्रत्याहार के साधन

प्रत्याहार की सिद्धि में कुछ साधन सहायक होते हैं। उन्हें साधक साधन कहा जा सकता है। जिनके द्वारा प्रत्याहार सिद्धि में सहायता प्राप्त होती है। परन्तु कुछ साधन

प्रत्याहार सिद्धि में बाधक होते हैं, उन्हें बाधक साधन कहा जा सकता है। **प्रत्याहार के सहायक साधन—**

प्रत्याहार का स्वरूप  
एवं इन्द्रिय वशीकरण  
विवेचन

1. **इन्द्रिय दमन**—प्रत्याहार सिद्धि के लिए प्रथम साधन इन्द्रिय दमन कहा जा सकता है, क्योंकि मनुष्य प्राचीन काल से ही अपनी इच्छाओं को इन्द्रियों द्वारा ही पूर्ण तृप्त करता आया है। अतः इन इन्द्रियों का स्वभाव पूर्व से ही बहिर्गमन का होता है। जो अतिदृढ़ होता जाता है। इन इन्द्रियों के स्वभाव में शिथिलता दमन से ही सम्भव है।
2. **विवेक ज्ञान**—इन्द्रियाँ दमन के पश्चात् और उच्छृंखल होकर इधर-उधर अपने विषयों की ओर जा सकती हैं। अतः उन्हें शान्त करने के लिए दूसरे साधन को अपनाना चाहिए। प्रत्याहार सिद्धि में दूसरा सहायक साधन विवेक है। मन तथा इन्द्रियों की स्वामी बुद्धि द्वारा विषयों के दोषदर्शन करने पर विषयों के प्रति अनुराग का त्याग हो जाता है। तब मन इन्द्रियों तथा चित्त पर भी इसका प्रभाव पड़ता है। विषयों के दोषदर्शन का बार-बार अभ्यास करने से बुद्धि बाह्य विषयों से विरक्त होकर अन्तःज्ञान की ओर उन्मुख होने लगती है। इन्द्रियाँ सुपथगामी तभी हो सकती हैं, जब मन सुसंस्कृत हो, सुसंस्कृत मन तभी बन सकता है, जब बुद्धि-विवेक सम्पन्न हो, बुद्धि मन को तभी उत्कृष्ट तथा सुपथगामी बना सकती है, जब साधक का चित्त स्वयं आत्मा के अधीन होकर विवेक-वैराग्य से युक्त होगा। प्रत्याहार के साधक तत्वों में योगदर्शन में आदेश दिया गया है—“**ते प्रतिप्रसवहेयासूक्ष्माः ।**” (पातंजलयोगसूत्र, 2/10) अर्थात् पूर्व जन्म के संस्कार रूपी क्लेशों को क्रिया योग से सूक्ष्म किये जाने तथा चित्त को अपने कारणों में लौटा देने से ये नष्ट करने योग्य हैं। ये क्लेशों का नाश निर्बीज समाधि में ही सम्भव हो सकता है। सबीज समाधि में इन क्लेशों का बाह्य रूप जीर्ण हो जाता है किन्तु बीज रूप में ये चित्त में विराजमान रहते हैं। अतः साधक को चाहिए कि आरम्भ में ही इन्हें ध्यान योग अथवा क्रियायोग द्वारा सूक्ष्म किया जा सकता है तथा सबीज समाधि में चित्त को भी विलीन कर देता है तब निर्बीज समाधि प्राप्त होती है। **‘ध्यानहेयास्तद्वृत्तयः ।’** (पातंजलयोगसूत्र, 2/11) अर्थात् उन क्लेशों की स्थूल वृत्तियाँ ध्यान के द्वारा नष्ट करने योग्य हैं। क्लेशों की वृत्तियाँ स्थूल, सूक्ष्म और कारण तीन प्रकार की होती हैं। जो कर्मों द्वारा आचरण में उतरती हैं। जैसे किसी से राग, द्वेष रखना, हिंसा आदि क्रिया करना। यह उनका स्थूल स्वरूप है। इसे सर्वप्रथम क्रियायोग द्वारा सूक्ष्म किया जाना चाहिए। कुविचार आने पर भी उन्हें क्रियान्वित ना करना सदाचार का आचरण करना, इस प्रकार यहाँ क्लेश निर्बल हो जाते हैं। इसके बाद भी इनका विचारों में बार – बार आना खत्म नहीं होता है। जो इनका सूक्ष्म रूप है। यह फिर सम्प्रज्ञात समाधि में नष्ट हो जाता है। इस प्रकार विचार आने भी बंद हो जाते हैं। इसके बाद ये बीज रूप में ये क्लेश विद्यमान रहते हैं। क्रियायोग द्वारा ये स्थूल वृत्तियाँ सूक्ष्म हो जाती हैं। अतः क्रियायोग से सूक्ष्म होकर ये वृत्तियाँ ध्यान द्वारा नष्ट हो जाती हैं।

**प्रत्याहार के बाधक साधन—**

प्रत्याहार की सिद्धि में एक वस्तु बाधक बनती है, जिसे ‘प्रारब्ध’ कहते हैं। हमारे जन्म-जन्मान्तरों से एकत्र हुये वासना रूपी संस्कार चित्त में एकत्र रहते हैं। ये संस्कार किसी निमित्त को पाकर जागृत हो जाते हैं तथा मन, बुद्धि के द्वारा इन्द्रियों को भी बलपूर्वक विषयों की ओर उन्मुख कर देते हैं, तब मनुष्य लाभ-हानि की अनदेखी कर इन कर्मों में प्रवृत्त रहता है। जैसा कि कहा गया है कि—**‘देवेन केनापि हृदिस्थितेन**

यथा नियुक्ताऽस्मि तथा करोमि' अर्थात् यह प्रारब्ध हमारे संस्कार रूपी देवता है, जो हमारे कर्म—विपाक (कर्मों के फल) के अनुसार प्रत्येक मनुष्य को प्रेरित करता है। इस भोग लिप्सा के जाग्रत होने पर बड़े-बड़े ज्ञानी, ध्यानी का तप, ध्यान, ज्ञान, निष्फल होते देखा गया है। क्योंकि बिना प्रत्याहार के कोई भी साधक धारणा, ध्यान, समाधि रूप अन्तरंग योग में प्रवेश नहीं कर सकता है। अतः साधक को प्रत्याहार द्वारा अपनी वृत्तियों को अन्तर्मुखी बनाने का प्रयत्न करते रहना चाहिए, क्योंकि अन्तर्मुखता ही मनुष्य के कल्याण का साधन है।

### 13.6 प्रत्याहार का फल इन्द्रिय वशीकरण के उपाय

योगदर्शन में इस प्रकार दिया गया है—'ततः परमावश्यतेन्द्रियाणाम्।' (पातञ्जलयोगसूत्रयोग, 2/55) अर्थात् इस प्रत्याहार से इन्द्रियाँ पूर्ण वशवर्तिनी हो जाती हैं। अर्थात् प्रत्याहार के सिद्ध हो जाने पर इन्द्रियाँ पूर्ण नियन्त्रण में आ जाती हैं। जबकि प्रत्याहार के सिद्ध होने से पूर्व इन्द्रियाँ अपने-अपने विषयों की ओर आकर्षित होती थीं, उन पर कोई नियन्त्रण नहीं था, परन्तु प्रत्याहार के सिद्ध होने पर इन्द्रियाँ वशवर्तिनी हो जाती हैं। अब इन वश में हुयी इन्द्रियों को साधक जहाँ चाहे वहाँ लगा सकता है।

प्रत्याहार की सिद्धि होने पर इन्द्रियाँ पूर्णरूपेण योगी के वश में आ जाती हैं। इन्द्रियों की वश्यता के विषय में लोगों की विविध मान्यतायें हैं। कुछ लोगों की यह मान्यता है कि इन्द्रियों के शब्दादि विषयों में आसक्त न होना ही उनकी वश्यता है। क्योंकि इन्द्रियों के भोग व्यक्ति को श्रेयमार्ग से दूर कर देते हैं। एक सीमा में रहकर विषयभोग करना हानिकारक नहीं है, कुछ लोगों का यह मत है कि अपनी इच्छा से शब्दादि विषयों का भोग करना इन्द्रियजय है। कुछ लोगों का यह मत है कि रागद्वेष के न रहने पर सुख-दुःख रहित शब्दादि विषयों का ज्ञान करना इन्द्रियजय है। जैगीषव्य का मत है कि चित्त की एकाग्रता के कारण इन्द्रियों के विषयभोग का अभाव ही इन्द्रियजय है। उससे इन्द्रियों की उत्कृष्ट वश्यता होती है। क्योंकि चित्त का निरोध होने पर इन्द्रियाँ निरुद्ध हो जाती हैं। उससे एक-एक इन्द्रिय को वश में करने के लिये जो भिन्न-भिन्न प्रयत्न किये जाते हैं, उनकी अपेक्षा नहीं रहती। कुछ योगाभ्यासी श्रोत्रेन्द्रिय को वश में करने के लिये पृथक् से अभ्यास करते हैं और रसना इन्द्रिय को जीतने के लिये पृथक् रूप से प्रयत्न करते हैं। चित्त को जीत लेने के पश्चात् सभी इन्द्रियाँ वश में आ जाती हैं। उनको वश में करने के लिये भिन्न-भिन्न उपाय करने की आवश्यकता नहीं रहती। इससे यह नहीं समझना चाहिये कि इन्द्रियों को वश में करने के लिये प्रयत्न नहीं करना चाहिये और चित्त को वश में करने से ही प्रयोजन सिद्ध होता है। जिस प्रकार चित्त को वश में करने का प्रयास करना आवश्यक है, उसी प्रकार इन्द्रियों को वश में करने का प्रयास करना भी आवश्यक है।

प्रत्येक योगाभ्यासी को सतत यह ध्यान रखना चाहिए कि मेरी कौन सी इन्द्रिय किस विषय में सम्बद्ध होकर किस शुभ-अशुभ विषय का ग्रहण कर रही है। अथवा किस इन्द्रिय के द्वारा मैं किस शुभाशुभ विषय को ग्रहण कर रहा हूँ। यदि मैं किसी इन्द्रिय के द्वारा अशुभ विषय का ग्रहण कर रहा हूँ तो मुझे शीघ्र ही अशुभ विषय से अपनी इन्द्रिय को हटा देना चाहिये। भोजन करते समय यह ध्यान रखना चाहिये कि मैं शरीर की रक्षा के लिये भोजन कर रहा हूँ वा रसना इन्द्रिय की तृप्ति के लिये। इसी प्रकार से नेत्रेन्द्रिय से देखते हुए यह जानना चाहिये कि क्या मैं किसी उत्तम कार्य की सिद्धि के लिये रूप देख रहा हूँ अथवा नेत्रेन्द्रिय की तृष्णा शान्त रखने के लिये देख रहा हूँ।



इस प्रकार से साधक को इन्द्रियों पर सदा नियन्त्रण रखना चाहिये। आचार्य मनु ने धर्म के दश लक्षणों में एक इन्द्रिय निग्रह को माना है और जितेन्द्रिय व्यक्ति का स्वरूप भी बतलाया है कि जो खाकर, स्पर्श करके, देखकर, सूँघकर, सुनकर न हर्ष अनुभव करता है और न शोक अनुभव करता है, वह व्यक्ति जितेन्द्रिय है। इस प्रकार चित्त को और इन्द्रियों को वश में करने का सदा प्रयत्न करना चाहिये। इससे इन्द्रियों की उत्कृष्ट वश्यता प्राप्त होती है।

#### बोध प्रश्न-1

##### 1. निम्नलिखित प्रश्नों के ठीक उत्तरों पर सही (✓) का चिन्ह लगाइये।

- I. इन्द्रियों द्वारा अपने विषयों को ग्रहण न करना तथा उन्हें लौटा देना क्या है।  
(प्रत्याहार/आसन)
- II. अष्टांग योग में प्रत्याहार की मान्यता किस अंग के रूप में है।  
(द्वितीय/पंचम)

##### 2. रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए।

- I. प्रत्याहार का फल.....है। (इन्द्रियवशीकरण/ इन्द्रियों का वश में न रहना)
- II. प्रत्याहार के सिद्ध होने पर साधक का.....आसक्ति का त्याग हो जाता है।  
(विषयों के प्रति/ईश्वर के प्रति)

#### बोध प्रश्न-2

##### 1. प्रत्याहार का लक्षण को स्पष्ट कीजिए।

.....

.....

.....

.....

##### 2. प्रत्याहार के सहायक साधन को स्पष्ट कीजिए।

.....

.....

.....

.....

#### अभ्यास प्रश्न 1

प्रत्याहार का लक्षण, स्वरूप तथा साधन और फल को स्पष्ट कीजिए।

### 13.7 सारांश

निरन्तर अभ्यास और दृढ़ संयम से ही इन्द्रिय निग्रह द्वारा प्रत्याहार अपनाया जा सकता है। यम से प्रत्याहार तक ये पाँच योगांग बहिरंग साधन हैं क्योंकि ये चित्त को बाह्य भौतिक पदार्थों की ओर जाने से रोकते हैं। इस प्रकार **इकाई-13 प्रत्याहार का स्वरूप एवं इन्द्रिय वशीकरण विवेचन** के अन्तर्गत प्रत्याहार का अर्थ एवं स्वरूप, लक्षण एवं प्रकार, एवं उसका फल तथा इन्द्रिय वशीकरण एवं उसके उपायों का वर्णन किया गया।

## 13.8 शब्दावली

प्रत्याहार	—	इन्द्रिय दमन करना
निरुद्ध	—	रोकना
निग्रह करना	—	वश में करना
विलीन	—	सम्मिलित करना
जितेन्द्रिय	—	इन्द्रियों को जीतने वाला
उत्कृष्ट वश्यता	—	सर्वोत्तम रूप से वश में करने वाली

## 13.9 कुछ उपयोगी पुस्तकें

- पातञ्जल योगदर्शन भाष्यम्, राजवीरशास्त्री, आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट दिल्ली 2005
- अन्तर्जगत् की यात्रा का ज्ञानविज्ञान भाग2, पाड्या प्रणव, वेदमाता, गायत्री ट्रस्ट शांतिकुंज, हरिद्वार, 2011
- योगदर्शन, दशौरा नन्द लाल, 2006
- सांख्य दर्शन एवं योगदर्शन भाष्यम्, श्रीराम शर्मा, वेदमाता, गायत्री ट्रस्ट शांतिकुंज, हरिद्वार 1982
- वेदों में योग विद्या, दिव्यानन्दसरस्वती, यौगिक शोध संस्थान, योगधाम ज्वालापुर हरिद्वार, 1999
- पातञ्जल योगसूत्र, करंबेलकर, कैवल्यधाम पु. वि., 1989
- योग विज्ञान, पूर्णचन्द्र पत्र शास्त्री नाहन हिमाचल प्रदेश 2002

## 13.10 बोध प्रश्न/उत्तर

### बोध प्रश्न-1

1. (i) प्रत्याहार (ii) पंचम
2. (i) इन्द्रियवशीकरण (ii) विषयों के प्रति

### बोध प्रश्न-2

1. पतञ्जलि के मत में योग दर्शन में प्रत्याहार का लक्षण करते हुए महर्षि पतञ्जलि ने इस प्रकार लिखा है कि—‘स्वविषयासम्प्रयोगे चित्तस्वरूपानुकार इवेन्द्रियाणां प्रत्याहारः।’ (पातञ्जलयोगसूत्र, 2/54) अर्थात् जब इन्द्रियों का स्व-विषयों से सम्बन्ध नहीं रहता तब उनका चित्त के स्वरूप में तदाकार सा हो जाना ‘प्रत्याहार’ है।

व्यास के मत में इन्द्रियगण भी चित्त निरोध होने पर निरुद्ध होते हैं, यही प्रत्याहार है।

विज्ञानभिक्षु के मत में इन्द्रियों का निग्रह करना अर्थात् उन्हें वश में करके अपनी इच्छानुसार उनसे कार्य लेना ही प्रत्याहार है।

यतो—यतोनिस्वरति मनस्चंचलमस्थिरम्।

ततस्ततो नियम्यैतदात्मन्येव वशं नयेत्॥

(घेरण्ड संहिता, 4/2)

अर्थात् जहाँ—जहाँ मन विचरण करे, इसे वहीं से लौटाने का प्रयत्न करते हुए आत्मा को वश में करें।

**विष्णु पुराण के मत में**—योगविदों को चाहिए कि वह शब्दादि विषयों में आसक्त इन्द्रियों का निग्रह और अपने—अपने विषयों से निरुद्ध इन्द्रियों को चित्त का अनुकरण करने वाला बनाये यही अभ्यास प्रत्याहार का रूप धारण कर लेता है।

**स्वामी विवेकानन्द के मत में**—यदि तुम चित्त को विभिन्न आकृतियाँ धारण करने से रोक सको, तभी तुम्हारा मन शान्त होगा और इन्द्रियाँ भी मन के अनुरूप हो जाएँगी। इसी को प्रत्याहार कहते हैं।

## 2. प्रत्याहार के सहायक साधन—

- **इन्द्रिय दमन**—प्रत्याहार सिद्धि के लिए प्रथम साधन इन्द्रिय दमन कहा जा सकता है, क्योंकि मनुष्य प्राचीन काल से ही अपनी इच्छाओं को इन्द्रियों द्वारा ही पूर्ण तृप्त करता आया है। अतः इन इन्द्रियों का स्वभाव पूर्व से ही बर्हिगमन का होता है। जो अतिदृढ़ होता जाता है। इन इन्द्रियों के स्वभाव में शिथिलता दमन से ही सम्भव है।
- **विवेकज्ञान**—इन्द्रियाँ दमन के पश्चात और उच्छृंखल होकर इधर—उधर अपने विषयों की ओर जा सकती हैं। अतः उन्हें शान्त करने के लिए दूसरे साधन को अपनाना चाहिए। प्रत्याहार सिद्धि में दूसरा सहायक साधन विवेक है। मन तथा इन्द्रियों की स्वामी बुद्धि द्वारा विषयों के दोष दर्शन करने पर विषयों के प्रति अनुराग का त्याग हो जाता है। तब मन इन्द्रियों तथा चित्त पर भी इसका प्रभाव पड़ता है। विषयों के दोषदर्शन का बार—बार अभ्यास करने से बुद्धि बाह्य विषयों से विरक्त होकर अन्तःज्ञान की ओर उन्मुख होने लगती है। इन्द्रियाँ सुपथगामी तभी हो सकती हैं, जब मन सुसंस्कृत हो, सुसंस्कृत मन तभी बन सकता है, जब बुद्धि—विवेक सम्पन्न हो, बुद्धि मन को तभी उत्कृष्ट तथा सुपथगामी बना सकती है, जब साधक का चित्त स्वयं आत्मा के अधीन होकर विवेक—वैराग्य से युक्त होगा। प्रत्याहार के साधक तत्वों में योगदर्शन में आदेश दिया गया है—‘**ते प्रतिप्रसवहेयासूक्ष्माः।**’ (पातंजलयोगसूत्र, 2/10) अर्थात् पूर्व जन्म के संस्कार रूपी क्लेशों को क्रिया योग से सूक्ष्म किये जाने तथा चित्त को अपने कारणों में लौटा देने से ये नष्ट करने योग्य हैं। ये क्लेशों का नाश निर्बीज समाधि में ही सम्भव हो सकता है। सबीज समाधि में इन क्लेशों का बाह्य रूप जीर्ण हो जाता है किन्तु बीज रूप में ये चित्त में विराजमान रहते हैं। अतः साधक को चाहिए कि आरम्भ में ही इन्हें ध्यान योग अथवा क्रियायोग द्वारा सूक्ष्म किया जा सकता है तथा सबीज समाधि में चित्त को भी विलीन कर देता है तब निर्बीज समाधि प्राप्त होती है। ‘**ध्यानहेयास्तद्वृत्तयः।**’ (पातंजलयोगसूत्र, 2/11) अर्थात् उन क्लेशों की स्थूल वृत्तियाँ ध्यान के द्वारा नष्ट करने योग्य हैं। क्लेशों की वृत्तियाँ स्थूल, सूक्ष्म और कारण तीन प्रकार की होती हैं। जो कर्मों द्वारा आचरण में उतरती हैं। जैसे किसी से राग, द्वेष रखना, हिंसा आदि क्रिया करना। यह उनका स्थूल स्वरूप है।

इसे सर्वप्रथम क्रियायोग द्वारा सूक्ष्म किया जाना चाहिए। कुविचार आने पर भी उन्हें क्रियान्वित ना करना सदाचार का आचरण करना, इस प्रकार यह क्लेश निर्बल हो जाते हैं। इसके बाद भी इनका विचारों में बार – बार आना खत्म नहीं होता है। जो इनका सूक्ष्म रूप है। यह फिर सम्प्रज्ञात समाधि में नष्ट हो जाता है। इस प्रकार विचार आने भी बंद हो जाते हैं। इसके बाद ये बीज रूप में ये क्लेश विद्यमान रहते हैं। क्रियायोग द्वारा ये स्थूल वृत्तियाँ सूक्ष्म हो जाती हैं। अतः क्रियायोग से सूक्ष्म होकर ये वृत्तियाँ ध्यान द्वारा नष्ट हो जाती है।

**अभ्यास प्रश्न—**

इस प्रश्न का उत्तर विद्यार्थी स्वयं लिखें।



ignou  
THE PEOPLE'S  
UNIVERSITY

---

## इकाई 14 धारणा, ध्यान, समाधि का अर्थ, स्वरूप और वैशिष्ट्य

---

### इकाई की रूपरेखा

- 14.0 उद्देश्य
- 14.1 प्रस्तावना
- 14.2 धारणा का अर्थ
- 14.3 धारणा का लक्षण
- 14.4 धारणा का स्वरूप
- 14.5 धारणा का वैशिष्ट्य
- 14.6 ध्यान का अर्थ
- 14.7 ध्यान का लक्षण
- 14.8 ध्यान का स्वरूप एवं वैशिष्ट्य
- 14.9 समाधि का अर्थ, स्वरूप एवं वैशिष्ट्य
- 14.10 सारांश
- 14.11 शब्दावली
- 14.12 कुछ उपयोगी पुस्तकें
- 14.13 बोध प्रश्न/उत्तर

---

### 14.0 उद्देश्य

---

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप—

- धारणा का अर्थ, स्वरूप एवं वैशिष्ट्य के बारे में जान सकेंगे।
- ध्यान का अर्थ, स्वरूप एवं वैशिष्ट्य के बारे में जान सकेंगे।
- समाधि का अर्थ, स्वरूप एवं वैशिष्ट्य के बारे में जान सकेंगे।
- प्रयुक्त तकनीकी शब्दावली के बारे में जान सकेंगे।

---

### 14.1 प्रस्तावना

---

महर्षि पतंजलि ने साधन पाद, क्रियायोग, पंचक्लेश, हेय, हेतु, हान और हानोपाय रूप योग के चतुर्व्यूह का कथन तथा दृश्य और द्रष्टा का स्वरूप बताया है। कैवल्य के स्वरूप का वर्णन किया है तथा कैवल्य को प्राप्त करने के लिए योगांगों के बहिरंग योग का फल सहित वर्णन किया है। योग के बहिरंग अंग यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार हैं। तृतीय पाद विभूति पाद में महर्षि ने धारणा, ध्यान और समाधि का वर्णन किया है। धारणा, ध्यान, समाधियोग के अन्तरंग साधन हैं। बहिरंग साधनों से चित्त निर्मल तथा सूक्ष्म विषय को जानने की सामर्थ्य प्राप्त करता है। धारणा व ध्यान योग के प्रमुख साधन हैं। अष्टांग योग आठवाँ अंग 'समाधि' इससे प्रथम अंगों का फल है जो अपने आप में एक विभूति है और इस विभूति की प्राप्ति में अन्तरंग

साधन धारणा व ध्यान की महत्वपूर्ण भूमिका है। 'धारणा' किसी एक स्थान में चित्त को ठहराने की अवस्था है तथा 'ध्यान' उस स्थान विशेष में वृत्ति का एक तार चलना ध्यान है। इस प्रकार इकाई-14 धारणा, ध्यान, समाधि का अर्थ, स्वरूप और वैशिष्ट्य के अन्तर्गत योग के अन्तरंग साधन धारणा, ध्यान एवं समाधि के अर्थ, स्वरूप एवं वैशिष्ट्य का अध्ययन किया जायेगा।

---

## 14.2 धारणा का अर्थ

---

धारणा शब्द की व्युत्पत्ति संस्कृत की 'धृ' धातु से हुई है, जिसका अर्थ आधार या नींव है। इस प्रकार धारणा का अर्थ वह वस्तु या प्रत्यय जिस पर मन दृढ़तापूर्वक आधारित होता है। योग में धारणा का अर्थ मन को किसी एक बिन्दु पर लगाये रखना या टिकाये रखना धारणा है।

---

## 14.3 धारणा का लक्षण

---

महर्षि पतंजलि के अनुसार—

‘देशबन्धश्चित्तस्य धारणा’। (पातंजलयोगसूत्र, 3/1) अर्थात् किसी एक देश में चित्त को ठहराना धारणा है।

महर्षि व्यास के अनुसार—

‘नाभिचक्रं हृदयपुण्डरीकं, मूर्ध्नि ज्योतिषि, नासिकाग्रे, जिह्वाग्रे  
इत्येवमादिषु देशेषु वाह्ये वा विषये चित्तस्य वृत्तिमात्रेण बन्ध इति धारणा।’

अर्थात् नाभिचक्र, हृदय, पुण्डरीक, मूर्धाज्योति, नासिकाग्र, जिह्वाग्र इत्यादि देशों में (बन्ध होना) अथवा वाह्य विषयों में वृत्तिमात्र के द्वारा चित्त का जो बन्ध है वही धारणा है।

कूर्मपुराण के अनुसार—

हृदयकमल, नाभि मूर्धा, पर्वत के शिखर इत्यादि प्रदेशों में चित्त के बन्धन को धारणा कहते हैं।

त्रिशिखिब्रह्मणोपनिषद् के अनुसार—

चित्त का निश्चलीय भाव होना ही धारणा है और शरीरगत पंचमहाभूतों में मनो धारणा रूपधारण, भवसागर को पार कराने वाली होती है।

विज्ञानभिक्षु के अनुसार—

जिस देश में ध्येय का चिन्तन किया जाता है, वहाँ चित्त को स्थिर करने को धारणा कहते हैं।

स्वामी विवेकानन्द के अनुसार—

जब मन शरीर के भीतर या उसके बाह्य किसी वस्तु के साथ संलग्न होता है और कुछ समय तक उसी तरह रहता है, तो उसे धारणा कहते हैं।

जिस चित्त बन्ध में केवल उसी देश का (जिसमें चित्त बद्ध किया गया) ज्ञान होता रहता है, और तब प्रत्याहार इन्द्रिय समूह स्वविषय को ग्रहण नहीं करती हैं तब प्रत्याहार मूलक वैसी धारणा ही समाधि की अंगभूत धारणा होती है।

#### 14.4 धारणा का स्वरूप

महर्षि पतंजलि ने तृतीय पाद विभूति पाद केवल उत्तम अधिकारियों के लिए बताया गया है। जब साधक पूर्व के अभ्यासों पर दक्षता प्राप्त कर लेता है तभी साधक धारणा का अभ्यास कर सकता है। धारणा, ध्यान व समाधि एक मानसिक प्रक्रिया है जो कि अष्टांग योग के अन्तरंग साधन के रूप में आती है। धारणा अन्तरंग योग के प्रथम अभ्यास के रूप में वर्णित है। धारणा वह है कि जब मन की चंचलता समाप्त हो जाए तथा नाभि, हृदय, नासिका के अग्रभाग या जीभ के अग्रभाग आदि देश में चित्त को ठहरा दिया जाए। महर्षि पतंजलि ने धारणा का वर्णन करते हुए इस प्रकार वर्णन किया है—‘देशबंधचित्तस्य धारणा।’ (पातजल योगसूत्र, 3/1) अर्थात् किसी एक देश में चित्त का ठहराना धारणा है। इस सूत्र में धारणा की व्याख्या की गई है कि जब चित्त कर भटकाव समाप्त हो जाता है, तब वह पूर्णतया साधक के नियन्त्रण में आ जाता है। इसी चित्त शक्ति का उपयोग इस स्थिति से पहले संसार की उपलब्धियों तथा भोगों में हो रहा था। नियन्त्रित चित्त अब किसी एक स्थान पर अपनी इच्छानुसार केन्द्रित किया जा सकता है। वह स्थान शरीर के भीतर भ्रुकुटि, नाभि, हृदय चक्र आदि हो सकते हैं, अथवा बाह्य स्थान सूर्य, गुरुमूर्ति, ध्रुव आदि हो सकते हैं। इन भिन्न-भिन्न स्थान पर चित्त को ठहरा देना ही धारणा है।

#### 14.5 धारणा का वैशिष्ट्य

प्रत्याहार द्वारा इन्द्रियों को संयमित करने की तथा अन्तर्मुखी करने की प्रक्रिया है। तथा मानसिक शक्तियों का जागरण भी प्रत्याहार द्वारा होता है। धारणा द्वारा उन जाग्रत मानसिक शक्तियों को सही दिशा देना है। धारणा सही दिशा व एकाग्र करने की प्रक्रिया है। धारणा द्वारा चित्त की एकाग्रता तथा स्थिरता में वृद्धि होती है। धारणा द्वारा साधक उच्चस्तरीय संवेदनाओं के ग्रहण योग्य बन जाता है। वेदों, पुराणों, उपनिषदों में धारणा का वैशिष्ट्य बताया गया है।

यजुर्वेद के अनुसार—

‘सीरा युञ्जन्ति कवयो युगा विन्वते पृथक्।

धीरा देवेशु सुम्नया।।’

यजु0 12/67

अर्थात् यजुर्वेद में कहा गया है कि ध्यान करने वाले विद्वानलोग यथायोग्य विभाग से नाड़ियों में अपने आत्मा से परमेश्वर की धारणा करते हैं। जो योगयुक्त कर्मों में तत्पर रहते हुए, ज्ञान एवम आनन्द को फैलाते हुए विद्वानों के मध्य प्रशंसा को पाकर परमानन्द के भागी होते हैं। यजुर्वेदीय मन्त्रों में वर्णन मिलता है कि ‘उत्साह पूर्वक, हृदय, मन, बुद्धि तथा प्राण व इन्द्रियों के द्वारा परमात्मा को धारण किया जाता है अर्थात् परमेश्वर की धारणा की जाती है, तथा धारणा शक्ति को बड़ा कर साधक प्राचीन ऋषियों के समान मोक्ष पद को प्राप्त करता है। इस प्रकार वेदों में धारणा का अनेकों उपयोगिताएँ बताई गई हैं कि इससे साधक उस परम पद को प्राप्त कर लेता

है। परन्तु इसके अतिरिक्त धारणा के द्वारा मानसिक एकाग्रता तथा ध्यान कर पृष्ठभूमि की तैयारी तथा कर्मों में कुशलता आदि प्राप्त किया जा सकता है, जिसके कुछ बिन्दुओं पर वर्णन इस प्रकार से है। मानसिक एकाग्रता की प्राप्ति में सहायक धारणा किसी एक देश में चित्त को ठहरा देना है। यदि देखा जाए तो यह एक मानसिक व्यायाम की प्रक्रिया है। धारणा से मन की एकाग्रता व स्थिरता में वृद्धि होती है, तथा व्यक्तित्व का विकास होता है। धारणा द्वारा मानसिक एकाग्रता में वृद्धि होकर ध्यान व समाधि के अभ्यास में सहायक बनाते हैं। धारणा के द्वारा ध्यान में प्रवेश किया जाता है। धारणा के द्वारा मन एकाग्र हो जाता है। मन का भटकाव समाप्त हो जाता है। भटकाव समाप्त होने से स्थिरता प्राप्त होती है। यही स्थिरता पर एक वृत्ति का लगातार चलना ही ध्यान है अतः कहा जा सकता है कि धारणा ही, किसी एक देश में चित्त का ठहराव ध्यान की पृष्ठभूमि है। धारणा के अभ्यास से सभी कर्म कुशलता पूर्वक किये जा सकते हैं। जीवन के किसी भी क्षेत्र में, कला के क्षेत्र में, अध्ययन का क्षेत्र हो, चिन्तन, मनन या, लिखने-बोलने आदि सभी क्षेत्रों में धारणा की ही भूमिका महत्वपूर्ण है। किसी भी कार्य में मन को केन्द्रित कर, उस कार्य में तन्मय हो जाना तथा उस समय अन्य किसी विचारों का मन में ना चलने देना धारणा है। इसी धारणा के अभ्यास से कर्म कुशलता पूर्वक हो जाते हैं क्योंकि इससे मन की चंचलता मिट कर एकाग्रता, एक ही बिन्दु पर केन्द्रित हो जाती है। इसका अभ्यास करने से साधक की शक्ति कई गुना बढ़ जाती है तथा वह कार्यों को कुशलता से करने लगता है।

---

## 14.6 ध्यान का अर्थ

---

ध्यान शब्द की उत्पत्ति 'धै' धातु से ल्युट् प्रत्यय लगाने से हुई है जिसका अर्थ है, चिन्तन करना। महर्षि पतंजलि के अनुसार प्रत्याहार से जब चित्त वृत्तियों को एकीकृत किया जाता है तब एकीकृत चित्त वृत्तियों को धारणा का अभ्यास करते हुए किसी एक लक्ष्य पर निर्धारित किया जाता है। एकीकृत चित्त वृत्तियों के बीच कोई भी अन्य वृत्ति ना आए, चित्त में निरन्तर उसका ही मनन होता रहे, उसे ही ध्यान कहते हैं अर्थात् इसे इस तरह भी कह सकते हैं, ध्येय विषय पर निरन्तर मनन ही ध्यान है। ध्यान चित्त की वह अवस्था है जिसमें चित्त एकाग्र हो जाता है। सतोगुण की प्रधानता हो जाती है तथा रजोगुण व तमोगुण का प्रभाव समाप्त हो जाता है। ध्यान की अवस्था में चित्त की मूढ़, क्षिप्त, विक्षिप्त अवस्थाएँ विलीन हो जाती हैं। महर्षि दयानन्द ने ध्यान के पारिभाषिक योगसूत्र का स्पष्टीकरण इस प्रकार किया है कि धारणा के पीछे उसी देश में ध्यान करने और आश्रय लेने के योग्य जो अन्तर्यामी व्यापक परमेश्वर है, उसके प्रकाश और आनन्द में अत्यन्त प्रेम और भक्ति के साथ इस प्रकार प्रवेश करना ही है। जैसे समुद्र के बीच में नदी प्रवेश करती है। उस समय में ईश्वर को छोड़ कर किसी अन्य पदार्थ का स्मरण नहीं करना किन्तु उसी अन्तर्यामी के स्वरूप और ज्ञान में मग्न हो जाना उसी का नाम ध्यान है।

---

## 14.7 ध्यान का लक्षण

---

ध्यान वह अवस्था है, जब धारणा का अभ्यास हो जाए, तब ध्यान की अवस्था प्राप्त होती है, जो कि स्वयं होने वाली प्रक्रिया है।

**महर्षि पतंजलि के अनुसार—**

‘तत्रप्रत्ययैकतानता ध्यानम्।’ (पातंजलयोगसूत्र, 3/2) अर्थात् जहाँ पर चित्त को केन्द्रित किया जाए उसी में वृत्ति का एक तार चलना अर्थात् एकाग्र होना ही ध्यान है।



### स्वामी ओमानन्द तीर्थ के अनुसार—

चित्त जब बाहर के विषयो की इन्द्रियों द्वारा वृत्तिमात्र से ग्रहण करता है तो ध्यानावस्था में जब प्रत्याहार द्वारा इन्द्रियाँ अन्तर्मुखी हो जाती हैं, तब वह ध्येय विषय को वृत्ति मात्र से ही ग्रहण करता है। वह वृत्ति ध्येय के विषय के तदाकार होकर स्थिर रूप में भासने लगती है। अर्थात् स्थिर रूप में उसके स्वरूप को प्रकाशित करने लगती है।

### महर्षि व्यास के अनुसार—

उस देश में ध्येय विषयक प्रत्यय की जो एक तानता अर्थात् अथ प्रत्यय के द्वारा अपरामृष्ट एक रूप प्रवाह है, वही ध्यान है।

### विज्ञान भिक्षु के अनुसार—

उस देश विशेष में अन्य वृत्तियों के व्यवधान से रहित ध्येयाकार वृत्ति के प्रवाह को ध्यान कहते हैं। इन्होंने हृदय कमल आदि में चतुर्भुज विष्णु आदि का चिन्तन अथवा बुद्धि की वृत्ति में उससे व्यतिरिक्त चैतन्य का चिन्तन तथा कारण रूप उपाधि में ईश्वर का चिन्तन ध्यान का विषय बताया है।

### स्वामी शिवानन्द के अनुसार—

ध्यान मोक्ष का द्वार खोलता है। धारा के सतत् प्रवाह के सदृश्य किसी एक ही विचार के प्रवाह को बनाये रखना ही ध्यान है।

### घेरण्ड संहिता के अनुसार—

“ध्यानात्प्रत्यक्षं आत्मनः।” (घेरण्डसंहिता, 1/11) अर्थात् ध्यान से अपनी आत्मा में जो चाहे प्रत्यक्ष हो जाता है। अर्थात् ध्यान के द्वारा आत्मज्ञान की प्राप्ति होती है।

### ऋग्वेद के अनुसार—

आ त्वा विशत्त्विन्दवः समुन्द्रमिव सिन्धवः। न त्वामिन्द्रातिरिच्यते॥ (ऋग्वेद 8/92/22)  
अर्थात् अनेको नदियाँ जिस प्रकार समुद्र में समा जाती हैं वैसे ही परमेश्वर में ध्यान करने वाले अपनी इन्द्रियों को समेट कर परमात्मा के आनन्द में निमग्न हो जाते हैं।

### श्रीमद्भगवद्गीता के अनुसार—

यथादीपो निवातस्थो नेरगते सोपमा स्मृता।

योगिना यतचित्तस्य युंजतो योगमात्मनः॥

(गीता, 6/19)

जिस प्रकार वायु रहित स्थान में दीपक की लौ चलायमान नहीं होती, वैसी ही उपमा परमात्मा के ध्यान में लगे हुए योगी के जीते हुए चित्त की कही गयी है।

---

## 14.8 ध्यान का स्वरूप एवं वैशिष्ट्य

---

योगांगों में सप्तम योगांग ध्यान उपासना के साधनों में विशेष महत्वपूर्ण है। पवित्र विचारों में निरन्तर स्नान करना ही ध्यान है। ध्यान की अपनी उत्कृष्टता के कारण ही राजयोग जो कि आठ अंगों से युक्त है उसे ध्यान योग भी कहा जाता है। ध्यान योग द्वारा मनुष्य इस संसार चक्र के माया मोह का सर्वथा निवारण कर जब परमात्मा के

प्रति प्रीति करता है, तभी योग की स्थिति प्राप्त होती है। इस प्रकार योग की सिद्धि के लिए परमात्मा की प्राप्ति के लिए या मोक्ष की प्राप्ति के लिए यदि कोई साधन है तो वह प्रमुख साधन ध्यान ही है।

ध्यान से अहंकार का नाश होता है। अस्मिता का सुधार होता है। ध्यान से साधक का अहंकार गिरकर केवल हूँ ही शेष रह जाता है, तथा इसका भी लय समाधि में हो जाता है। वेदों, पुराणों, उपनिषदों में भी ध्यान की वैशिष्ट्य का वर्णन किया है। ऋग्वेद में कहा गया है—‘ते सत्येन मनसा दीध्यानाः स्वेन युक्तासः क्रतुना वहन्ति।’ (ऋग्वेद 7/90/5) अर्थात् जो सच्चे मन से ध्यान करते हैं, वे सच्चे ज्ञान कर्म से युक्त होते हैं अर्थात् उनके ज्ञान—कर्म और मन में कोई द्वेष नहीं रहता है।

**श्वेताश्वतर उपनिषद के अनुसार—**

‘ज्ञात्वा देवं सर्वपाशापहानिः क्षीणैः क्लेशैर्जन्ममृत्युप्रहाणिः  
तस्या भिध्यानात्तृतीयं देहभेदे विश्वैश्वर्यं केवल आप्तकामः॥’

अर्थात् परमेश्वर का अभिध्यान चिन्तन तथा जप आदि करने से अविद्या आदि जो भी पंचक्लेश हैं, उनकी निवृत्ति होती है, तथा समस्त पापों का नाश, जन्म—मृत्यु का अन्त हो इससे ही मोक्ष प्राप्त होता है।

**छान्दोग्योपनिषद के अनुसार—**‘ध्यानं वाव .....स यो ध्यानं ब्रह्मोत्पुपास्ते।’ (छान्दोग्योपनिषद्, 7/6/1-2) सनत्कुमार ने ध्यान की महिमा महर्षि नारद को समझाते हुए कहा है—ध्यान (आत्मा की एकाग्रता) ही चित्त से भी महान है। पृथ्वी अन्तरिक्ष, सौर मण्डल, जल, पर्वत, देवताजन और मनुष्य आदि प्रकृति का सारा विकास अपने रचियता परमेश्वर का मानो ध्यान कर रहे हो। इस प्रकार जो भी मनुष्य इस लोक में मनुष्यों की महत्ता को प्राप्त करते हैं, वे सभी ध्यान से प्राप्त करते हैं। उन मनुष्यों की समृद्धि का कारण ध्यान की कला का अंश ही है। ध्यान से सामर्थ्य शक्ति का संचय होता है। अतः हे नारद! तू ध्यान को सिद्ध कर। जो उपासक ध्यान को महान जानकर भगवान की उपासना करता है। ध्यान में अपने अराध्य (परमात्मा) की अराधना करता है। जहाँ तक ध्यान की गति है वहाँ तक उसका स्वच्छन्द संचार होता है।

## 14.9 समाधि का अर्थ, स्वरूप एवं वैशिष्ट्य

आचार्य पतंजलि ने कहा है कि—‘तदेवार्थमात्रनिर्भासं स्वरूपशून्यमिव समाधिः’ (योगसूत्र 3/2) अर्थात् जब ध्यान में केवल ध्येय मात्र की ही प्रतीति होती है और चित्त का निज स्वरूप शून्य सा हो जाता है तब वही ध्यान ही समाधि हो जाता है। कहने का आशय यह है कि वह ध्यान ही जब ध्येय के स्वरूप मात्र का प्रकाशक होते हुए अपने अर्थात् स्वयं ध्यान के स्वरूप से शून्य सा हो जाता है तब समाधि कहलाता है। ध्यान की अवस्था में तीन बातों की स्थिति होती है और उन्हीं का भान भी होता है। वे बातें हैं—ध्याता, ध्यान और ध्येय। इन्हें ही क्रमशः चित्त, चित्तवृत्ति तथा विषय कहते हैं। जब ध्यान का अभ्यास करते—करते वह ध्यान अपने स्वरूप का त्याग सा करके ध्येय के ही रूप को धारण कर लेता है, ध्येय स्वरूप ही बन जाता है, तब उसे समाधि कहते हैं। उस समय ध्यान उसी प्रकार से ध्येय विषय के रूप को धारण कर लेता है यद्यपि उस अवस्था में भी जल में लवण की स्थिति रहती है, किन्तु जल के रूप में मिल कर रहती है। इसी प्रकार समाधि के रूप को धारण कर लेने पर भी ध्यान की सत्ता रहती ही है, किन्तु ध्यान रूप से न भासित होकर ध्येय रूप से भासित होती है। यहाँ यह

ध्यान रखना है कि समाधि की अवस्था में ध्यान विद्यमान रहता हुआ भी स्वरूपतः प्रतीत न होने से स्वरूप शून्य सा लगता है। यही सम्प्रज्ञात और असम्प्रज्ञात समाधि का मूल अन्तर है।

जिस समाधि का वर्णन किया गया है वह चित्त वृत्तियों के निरोधरूप योग का साधन है—‘योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः।’ धारणा, ध्यान और समाधि ये तीन योग के अन्तरंग साधन हैं। अन्तरंग साधन होने से इन तीनों का विषय एक ही होना चाहिए अर्थात् जिस विषय की धारणा हो उसी विषय का ध्यान हो और फिर उसी विषय को लेकर समाधि भी होनी चाहिए। ये तीनों ही मिल कर संयम कहलाते हैं—‘त्रयमेकत्रसंयमः’ (योगसूत्र 3/4) यह संयम योग साधना के साधक के लिये आवश्यक ही नहीं अनिवार्य भी है। समाधि की दो अवस्थाएँ हैं—सम्प्रज्ञात समाधि और असम्प्रज्ञात समाधि। इनमें से प्रथम आरंभिक अवस्था है और दूसरी अंतिम अवस्था है।

1. **सम्प्रज्ञात समाधि**—एकाग्र अवस्था को संप्रज्ञात योग कहते हैं। इसमें अभीष्ट विषय का स्पष्ट ज्ञान रहता है। इस समाधि के चार सोपान हैं—

- **सवितर्क समाधि**—इस अवस्था में किसी स्थूल विषय (जैसे नाक के अग्रभाग इत्यादि) पर ध्यान केन्द्रित करना पड़ता है।
- **सविचार समाधि**—इस अवस्था में सूक्ष्म विषय या तन्मात्र पर ध्यान केन्द्रित किया जाता है। स्थूल विषय के ज्ञान के बाद सूक्ष्म विषय पर चित्त लगाना पड़ता है।
- **सानंद समाधि**—सूक्ष्म वस्तुओं के बाद सूक्ष्मतर वस्तुओं (जैसे इन्द्रियों) पर ध्यान लगाना पड़ता है। यहाँ एकादश इन्द्रियों द्वारा प्राप्त संवेदन सुखदायक होती है, इसलिए इस अवस्था को सानंद समाधि कहते हैं।
- **सास्मिता समाधि**—यह समाधि की अंतिम एवं पूर्णावस्था है। यहाँ स्थूल या सूक्ष्म विषयों पर ध्यान न देकर चित्त को अहंकार पर ध्यान लगाना पड़ता है। अहंकार ‘अस्मिता’ है। इसीलिए इस समाधि को सास्मिता समाधि कहा जाता है। इस अवस्था में किसी विषय का पूर्ण ज्ञान हो जाता है।

2. **असम्प्रज्ञात समाधि**—सम्प्रज्ञात समाधि में वस्तु का पूर्ण ज्ञान हो जाता है और इसमें विषय की चेतना भी रहती है। किन्तु असम्प्रज्ञात समाधि में साधक को किसी विषय की चेतना नहीं रहती। ध्यान का विषय भी लुप्त हो जाता है। यहाँ आत्मा विशुद्ध चैतन्य के रूप में हो जाती है। जब पुरुष अपने को विशुद्ध चेतना समझ लेता है, जब उसे प्रकृति या इसके विकारों से प्रभावित नहीं होना पड़ता। वह सांसारिक बंधनों से पूर्णतया मुक्त होकर मोक्ष या कैवल्य पा लेता है। यहाँ योगी को चरम पुरुषार्थ की प्राप्ति हो जाती है। इस अवस्था में साधक विवेकज्ञान प्राप्त कर लेता है और सभी प्रकार के बंधनों एवं दुःखों से मुक्त हो जाता है।

**बोध प्रश्न-1**

1. निम्नलिखित प्रश्नों के ठीक उत्तरों पर सही (✓) का चिन्ह लगाइये।

- समाधि कितने प्रकार की होती है। (2/4)
- सवितर्क समाधि में किस विषय पर ध्यान करना होता है। (स्थूल विषय/सूक्ष्म विषय)

## 2. रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए।

I. सानन्द समाधि मे.....ध्यान लगाना पड़ता है। (सूक्ष्मतर/स्थूलतम)

II. सास्मिता समाधि.....है। (अन्तिम अवस्था/प्रथम अवस्था)

### बोध प्रश्न-2

1. ध्यान का अर्थ एवं लक्षण को स्पष्ट कीजिए।

.....

.....

.....

.....

2. धारणा का अर्थ एवं लक्षण को स्पष्ट कीजिए।

.....

.....

.....

.....

.....

### अभ्यास प्रश्न 1

पतंजलियोगदर्शन में समाधि को स्पष्ट कीजिए।

### 14.10 सारांश

महर्षि पतंजलि ने तृतीय पाद, विभूतिपाद में अन्तरंग योग का वर्णन किया है। विभूति पाद उत्तम अधिकारियों के लिए बताया है। अष्टांग योग में बहिरंग योग के अनुष्ठान करने के बाद ही साधक धारणा, ध्यान का अभ्यास कर सकता है। अष्टांग योग का छटा अंग धारणा, किसी एक देश में चित्त को ठहरा देना है, तथा स्थिर हुए चित्त में उसी वृत्ति का एकतार चलना ध्यान है। धारणा द्वारा मानसिक एकाग्रता की प्राप्ति होती है। जिससे कर्मों में कुशलता आती है, तथा ध्यान के लिए पृष्ठभूमि तैयार होती है, तथा अन्तर्ज्ञान की प्राप्ति होती है। अतीन्द्रिय क्षमता की प्राप्ति कर संयम द्वारा साधक विभिन्न प्रकार की विभूतियों की प्राप्ति कर सकता है, तथा संयम के जय से प्रज्ञा का आलोक होकर मानव जीवन उत्कृष्ट बन जाता है। इस प्रकार **इकाई-14 धारणा, ध्यान, समाधि का अर्थ, स्वरूप और वैशिष्ट्य** के अन्तर्गत योग के अन्तरंग साधन धारणा, ध्यान एवं समाधि के अर्थ, स्वरूप एवं वैशिष्ट्य का अध्ययन किया गया।

### 14.11 शब्दावली

दक्षता	—	निपुणता होना, चतुर, कुशल होना।
विभूति	—	अलौकिक सम्पदा
भ्रुकुटि	—	दोनों भौंह के बीच।
सदृश	—	समान

सप्तम	—	सातवाँ
अन्तर्यामी	—	सब कुछ जानने वाला
अपरामृष्ट	—	जो सम्बन्धित नहीं है।
ध्येयाकार	—	ध्येय का आकार

## 14.12 कुछ उपयोगी पुस्तकें

- पातंजल योगदर्शन भाष्यम्, राजवीर शास्त्री, आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट दिल्ली 2005
- अन्तर्जगत् की यात्रा का ज्ञानविज्ञान भाग 2, पाड्या प्रणव, वेदमाता, गायत्री ट्रस्ट शांतिकुंज, हरिद्वार, 2011
- योगदर्शन, दशौरा नन्द लाल, 2006
- सांख्य दर्शन एवं योगदर्शन भाष्यम्, श्रीराम शर्मा, वेदमाता, गायत्री ट्रस्ट शांतिकुंज, हरिद्वार 1982
- वेदों में योग विद्या, दिव्यानन्दसरस्वती, यौगिक शोध संस्थान, योगधाम ज्वालापुर हरिद्वार, 1999
- पातंजल योगसूत्र, करंबेलकर, कैवल्यधाम पु. वि., 1989
- योग विज्ञान, पूर्णचन्द्र पंत्र शास्त्री नाहन हिमाचल प्रदेश 2002

## 14.13 बोध प्रश्न/उत्तर

### बोध प्रश्न-1

1. (i) 2 (ii) स्थूल विषय
2. (i) सूक्ष्मतर (ii) अन्तिम अवस्था

### बोध प्रश्न-2

1. **ध्यान का अर्थ**—ध्यान शब्द की उत्पत्ति 'धै' धातु से ल्युट् प्रत्यय लगाने से हुई है जिसका अर्थ है, चिन्तन करना। महर्षि पतंजलि के अनुसार प्रत्याहार से जब चित्त वृत्तियों को एकीकृत किया जाता है तब एकीकृत चित्त वृत्तियों को धारणा का अभ्यास करते हुए किसी एक लक्ष्य पर निर्धारित किया जाता है। एकीकृत चित्त वृत्तियों के बीच कोई भी अन्य वृत्ति ना आए, चित्त में निरन्तर उसका ही मनन होता रहे, उसे ही ध्यान कहते हैं अर्थात् इसे इस तरह भी कह सकते हैं, ध्येय विषय पर निरन्तर मनन ही ध्यान है। ध्यान चित्त की वह अवस्था है जिसमें चित्त एकाग्र हो जाता है। सतोगुण की प्रधानता हो जाती है तथा रजोगुण व तमोगुण का प्रभाव समाप्त हो जाता है। ध्यान की अवस्था में चित्त की मूढ़, क्षिप्त, विक्षिप्त अवस्थाएँ विलीन हो जाती हैं। महर्षि दयानन्द ने ध्यान के पारिभाषिक योगसूत्र का स्पष्टीकरण इस प्रकार किया है कि धारणा के पीछे उसी देश में ध्यान करने और आश्रय लेने के योग्य जो अन्तर्यामी व्यापक परमेश्वर है, उसके प्रकाश और आनन्द में अत्यन्त प्रेम और भक्ति के साथ इस प्रकार प्रवेश करना ही है। जैसे समुद्र के बीच में नदी प्रवेश करती है। उस समय में ईश्वर

को छोड़ कर किसी अन्य पदार्थ का स्मरण नहीं करना किन्तु उसी अन्तर्यामी के स्वरूप और ज्ञान में मग्न हो जाना उसी का नाम ध्यान है।

**ध्यान का लक्षण**—ध्यान वह अवस्था है, जब धारणा का अभ्यास हो जाए, तब ध्यान की अवस्था प्राप्त होती है, जो कि स्वयं होने वाली प्रक्रिया है।

**महर्षि पतंजलि के अनुसार—**

‘तत्रप्रत्ययैकतानता ध्यानम्।’ (पातंजलयोगसूत्र, 3/2) अर्थात् जहाँ पर चित्त को केन्द्रित किया जाए उसी में वृत्ति का एक तार चलना अर्थात् एकाग्र होना ही ध्यान है।

**स्वामी ओमानन्द तीर्थ के अनुसार—**

चित्त जब बाहर के विषयो की इन्द्रियों द्वारा वृत्तिमात्र से ग्रहण करता है तो ध्यानावस्था में जब प्रत्याहार द्वारा इन्द्रियाँ अन्तर्मुखी हो जाती हैं, तब वह ध्येय विषय को वृत्ति मात्र से ही ग्रहण करता है। वह वृत्ति ध्येय के विषय के तदाकार होकर स्थिर रूप में भासने लगती है। अर्थात् स्थिर रूप में उसके स्वरूप को प्रकाशित करने लगती है।

**महर्षि व्यास के अनुसार—**

उस देश में ध्येय विषयक प्रत्यय की जो एक तानता अर्थात् अथ प्रत्यय के द्वारा अपरामृष्ट एक रूप प्रवाह है, वही ध्यान है।

**विज्ञान भिक्षु के अनुसार—**

उस देश विशेष में अन्य वृत्तियों के व्यवधान से रहित ध्येयाकार वृत्ति के प्रवाह को ध्यान कहते हैं। इन्होंने हृदय कमल आदि में चतुर्भुज विष्णु आदि का चिन्तन अथवा बुद्धि की वृत्ति में उससे व्यतिरिक्त चैतन्य का चिन्तन तथा कारण रूप उपाधि में ईश्वर का चिन्तन ध्यान का विषय बताया है।

2. **धारणा का अर्थ**—धारणा शब्द की व्युत्पत्ति संस्कृत की ‘धृ’ धातु से हुई है, जिसका अर्थ आधार या नींव है। इस प्रकार धारणा का अर्थ वह वस्तु या प्रत्यय जिस पर मन दृढ़तापूर्वक आधारित होता है। योग में धारणा का अर्थ मन को किसी एक बिन्दु पर लगाये रखना या टिकाये रखना धारणा है।

**धारणा का लक्षण**—महर्षि पतंजलि के अनुसार— ‘देशबन्धश्चित्तस्य धारणा’। (पातंजलयोगसूत्र, 3/1) अर्थात् किसी एक देश में चित्त को ठहराना धारणा है।

**महर्षि व्यास के अनुसार**—‘नाभिचक्रे हृदयपुण्डरीके, मूर्ध्नि ज्योतिषि, नासिकाग्रे, जिह्वाग्रे इत्येवमादिषु देशेषु वाह्ये वा विषये चित्तस्य वृत्तिमात्रेण बन्ध इति धारणा’। अर्थात् नाभिचक्र, हृदय, पुण्डरीक, मूर्धाज्योति, नासिकाग्र, जिह्वाग्र इत्यादि देशों में (बन्ध होना) अथवा वाह्य विषयो में वृत्तिमात्र के द्वारा चित्त का जो बन्ध है वही धारणा है।

**कूर्मपुराण के अनुसार**—हृदयकमल, नाभि मूर्धा, पर्वत के शिखर इत्यादि प्रदेशों में चित्त के बन्धन को धारणा कहते हैं।

**त्रिशिखिब्रह्मणोपनिषद् के अनुसार**—चित्त का निश्चलीय भाव होना ही धारणा है और शरीरगत पंचमहाभूतों में मनोधारणा रूपधारण, भवसागर को पार कराने वाली होती है।

धारणा, ध्यान, समाधि  
का अर्थ, स्वरूप और  
वैशिष्ट्य

**विज्ञानभिक्षु के अनुसार**—जिस देश में ध्येय का चिन्तन किया जाता है, वहाँ चित्त को स्थिर करने को धारणा कहते हैं।

**स्वामी विवेकानन्द के अनुसार**—जब मन शरीर के भीतर या उसके बाह्य किसी वस्तु के साथ संलग्न होता है और कुछ समय तक उसी तरह रहता है, तो उसे धारणा कहते हैं।

**स्वामी हरिहरानन्द के अनुसार**—जिस चित्त बन्ध में केवल उसी देश का (जिसमें चित्त बद्ध किया गया) ज्ञान होता रहता है, और तब प्रत्याहार इन्द्रिय समूह स्वविषय को ग्रहण नहीं करती है तब प्रत्याहार मूलक वैसी धारणा ही समाधि की अंगभूत धारणा होती है।

**अभ्यास प्रश्न—**

इस प्रश्न का उत्तर विद्यार्थी स्वयं लिखें।



ignou  
THE PEOPLE'S  
UNIVERSITY

---

## इकाई 15 विभूतिपाद में प्रतिपादित धारणा, ध्यान विषयक अवधारणा का निरूपण

---

### इकाई की रूपरेखा

15.0 उद्देश्य

15.1 प्रस्तावना

15.2 धारणा का लक्षण तथा स्थान

15.3 धारणा के प्रयोग के प्रकार

15.4 बाहर के देश में धारणा के प्रयोग

15.5 ध्यान का स्वरूप विषयक अवधारणा

15.6 सारांश

15.7 शब्दावली

15.8 कुछ उपयोगी पुस्तकें

---

### 15.0 उद्देश्य

---

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप—

- धारणा का लक्षण तथा स्थान के बारे में जान सकेंगे।
- धारणा के प्रयोग के प्रकार के बारे में जान सकेंगे।
- बाहर के देश में धारणा के प्रयोग के बारे में जान सकेंगे।
- ध्यान का स्वरूप विषयक अवधारणा के बारे में जान सकेंगे।
- प्रयुक्त तकनीकी शब्दावली के बारे में जान सकेंगे।

---

### 15.1 प्रस्तावना

---

योगदर्शन के इस विभूतिपाद में योग के अन्तरंग प्रथम एवं द्वितीय साधनों धारणा, ध्यान और योगाभ्यास के द्वारा योगी को जो विभूतियाँ प्राप्त होती हैं उनका वर्णन है। योगाभ्यास के करने से जो ज्ञान, बल, स्वास्थ्य आदि की प्राप्ति, मन, इन्द्रियों पर विजय प्राप्तिरूप ऐश्वर्य प्राप्त होते हैं, उनको विभूति कहते हैं। इस प्रकार **इकाई-15 विभूतिपाद में प्रतिपादित धारणा, ध्यान विषयक अवधारणा का निरूपण** में धारणा का लक्षण तथा स्थान, धारणा के प्रकार, बाहर के देश में धारणा के प्रयोग एवं ध्यान का स्वरूप विषयक अवधारणा का अध्ययन किया जायेगा।

---

### 15.2 धारणा का लक्षण तथा स्थान

---

महर्षि पतंजलि ने कहा है कि—‘देशबन्धश्चित्तस्य धारणा’ (योगसूत्र 3/1) अर्थात् किसी एक देश में चित्त को ठहराना ही धारणा है। कहने का आशय यह है कि चित्त का, नाभिचक्र, हृदयकमल, मस्तक में स्थित प्रकाश पुंज, नासिका तथा जिह्वा के अग्रभाग आदि स्थानों में अथवा प्रतिमा आदि बाह्य विषयों में, स्थिर होकर दृढ़ता के साथ लगना अर्थात् बँधना ही धारणा है। धारणा योग की असली कुंजी है। कहने का



आशय यह है कि जब किसी देश विशेष में वृत्तिमात्र ज्ञान मात्र से चित्त को बाँधना, रोकना, स्थिर करना 'धारणा' है। धारणा के दो स्थान हैं प्रथम आन्तरिक और दूसरा बाह्य। नाभि, हृदय, नासिका का अग्रभाग, मस्तक आदि आन्तरिक स्थान हैं। वृक्ष, पर्वतादि बाह्य स्थान हैं। जब योगाभ्यासी यम, नियम आदि का पालन करते-करते प्रत्याहार तक पहुँच जाता है तो मन उसके अधीन हो जाता है। मन के अधिकार में हो जाने से साधक अपनी इच्छानुसार जहाँ पर मन को स्थिर करना चाहता है। वहाँ पर स्थिर कर लेता है।

### 15.3 धारणा के प्रयोग प्रकार

धारणा का प्रयोग दो प्रकार से होता है प्रथम ईश्वर की स्तुति, प्रार्थना और उपासना करने के लिए और दूसरा किसी पदार्थ के स्वरूप को जानने के लिए है। जब प्रातः काल और सायंकाल ईश्वर की उपासना की जाती है तब हृदय आदि प्रदेश में चित्त को स्थिर करके की जाती है, इस स्थिति में धारणा का स्थान शरीर का एक अंग है। उसमें चित्त को स्थिर करके ईश्वर का ध्यान किया जाता है। इस स्थिति में ईश्वर उपास्य है और जीवात्मा उसका उपासक है। जब साधक अपने स्वरूप को जानने के लिये शरीर के हृदय आदि अंग में धारणा करता और ध्यान करता है तो इस स्थिति में उपास्य उपासक भाव नहीं है। जब साधक अपने शरीर के विषय में विशेष रूप से जानना चाहता है तब शरीर के ही हृदय आदि अंग में धारणा और ध्यान के माध्यम से उसके स्वरूप को जान लेता है। ईश्वर की उपासना के लिए और किसी अन्य पदार्थ के स्वरूप को जानने के लिए धारणा का प्रयोग किया जाता है। योग की ऊँची अवस्था में सीधे ही ईश्वर, जीव आदि में दोनों कार्य अर्थात् धारणा और ध्यान किये जा सकते हैं।

**बाहर के देश में धारणा का प्रयोग**—कोई व्यक्ति किसी वृक्ष के स्वरूप को जानने के लिए अपने चित्त को वृक्ष के किसी भाग में स्थिर करके उसके स्वरूप को जानना चाहता है। यह बाह्य देश में धारणा का प्रयोग है। जो बाहर के देश में धारणा की जाती है वह ईश्वरोपासना के लिए नहीं है। यद्यपि ईश्वर सर्वव्यापक है फिर भी जीवात्मा शरीर से बाहर ईश्वर के साथ सम्बन्ध नहीं जोड़ सकता, इसलिए ईश्वर की उपासना अपने शरीर एवं आत्मा में होती है बाहर नहीं।

### 15.4 ध्यान का स्वरूप विषयक अवधारणा

आचार्य पतंजलि ने कहा है कि—'तत्र प्रत्ययैकतानता ध्यानम्' (योगसूत्र 3/2) अर्थात् (तत्र) जिस स्थान में धारण की हुई है उस स्थान में (प्रत्यय—एकतानता) ज्ञेय विषयक ज्ञान का एक समान बना रहना ध्यान है अर्थात् उसी में वृत्ति का एक तार चलना ध्यान है। कहने का आशय यह है कि उन नाभिचक्र आदि स्थानों में जो ज्ञानवृत्ति अथवा ध्येयाकार चित्तवृत्ति की एकाग्रता है, वह 'ध्यान' कहा जाता है। वस्तुतः ध्यान का अर्थ ध्येय विषय का सतत मनन है। अर्थात् उसी विषय को लेकर विचार का बिना व्यवधान के प्रवाह है। यद्यपि योगसूत्र में सूत्रकार एवं भाष्यकार दोनों ने यह लिखा है कि देश विशेष में स्थित ईश्वर का ध्यान करना चाहिए। यही बात पुराणों से भी समर्थित होती है।

योग जिज्ञासुओं को ध्यान के विषय में विशेष रूप से जानना चाहिये। ईश्वर का ध्यान करने वाले साधकों को प्रथम शब्द प्रमाण अथवा अनुमान प्रमाण से ईश्वर के स्वरूप को अच्छे प्रकार से जान लेना चाहिये। यदि साधक ईश्वर के स्वरूप को ठी प्रकार से

नहीं जानते अथवा विपरीत जानते हैं तो ध्यान में सफलता नहीं मिलती। जैसे शब्द प्रमाण से यह जान लिया कि ईश्वर सर्वव्यापक, सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान, आनन्दस्वरूप है। ध्यान करते समय भी इसी प्रकार से ईश्वर को वैसा ही जानकर उसका ध्यान करना चाहिये। जो वस्तु जैसी है उसको वैसी ही जानकर ध्यान करना चाहिये। ध्यान करते समय जिस पदार्थ का ध्यान किया जाता है उसको छोड़कर अन्य पदार्थ का स्मरण नहीं करना चाहिये। और न इन्द्रियों से किसी पदार्थ को देखने का प्रयत्न ही करना चाहिये। यदि ध्यान के मध्य से मन से ध्येय से भिन्न विषय को उठा लिया जाता है तो उसको रोक देना चाहिये। महर्षि कपिल जी ने ध्यान के विषय में कहा है कि—‘रागोपहतिर्ध्यानम्’ (सांख्यदर्शन, 3/30) राग का रुक जाना ध्यान है अर्थात् ईश्वर का ध्यान करते समय अन्य किसी भी विषय में राग का न होना ध्यान है। **ध्यानं निर्विषयं मनः** (सांख्यदर्शन, 6/25) योग के विषय से भिन्न विषय में मन का न जाना ध्यान है। योगाभ्यासी रूपवान् पदार्थ के साक्षात्कार के लिए रूपवान् पदार्थ का ध्यान करता है। उसी समय वह रूप के भोग के लिये रूपवान् का ध्यान न करें। यदि करता है तो वह निर्विषय नहीं, सविषय है। ‘निर्विषय’ का अर्थ यह भी है कि वह रूपवान् पदार्थ के साक्षात्कार के समय मन में रसवान् पदार्थ का विचार न करें। रूपवान् पदार्थ के साक्षात्कार के लिए रूपवान् विषय का ध्यान करना निर्विषय ही है। योग के अनुकूल ही है। इसलिए प्रथम पदार्थ का स्वरूप शब्द प्रमाण वा अनुमान प्रमाण से अच्छे प्रकार से जानकर फिर जहाँ पर धारण की गई है, वहीं पर ध्यान करना चाहिये। यहाँ पर यह बात ध्यान देने की है कि कुछ भी न विचारने का नाम ध्यान नहीं है। ध्यानकाल में जिस पदार्थ का ध्यान किया जाता है वह पदार्थ और उसका नाम दोनों का ज्ञान साधक को होना चाहिये। जैसे ईश्वर का ध्यान करते समय उसका नाम ओम् है और वह नामी है अर्थात् ईश्वर वाच्य है और ओम् उसका वाचक शब्द है। ओम् का अर्थ सहित बार—बार जप करना और अन्य विषय में मन को न लगाना ध्यान है। इसलिये किसी भी विषय में कुछ भी न विचारना ध्यान नहीं है। महर्षि पतंजलि ने ध्यान के प्रकारों का वर्णन नहीं किया है। परन्तु प्राचीन ग्रन्थों में ध्यान के विभिन्न प्रकार बताये गये हैं। जिनका वर्णन निम्न प्रकार से है—

**घेरण्ड संहिता के अनुसार—**

घेरण्ड संहिता में ध्यान के तीन प्रकार बताये गये हैं—

**“स्थूलं ज्योतिस्तथासूक्ष्मं ध्यानस्य त्रिविधं बिन्दुः।**

**स्थूलं मूर्तिमयं प्रोक्तं ज्योतिस्तेजोमयं तथा**

**सूक्ष्मं, बिन्दुमयं ब्रह्म कुण्डली परदेवता।।**

(घेरण्ड संहिता, 6/1)

स्थूल ध्यान, ज्योति ध्यान और सूक्ष्म ध्यान के भेद से ध्यान तीन प्रकार का होता है। इसमें स्थूल ध्यान वह जिसमें मूर्तिमय ईष्टदेव का ध्यान किया जाता है। इसमें ज्योतिर्मय ध्यान वह है जिसमें तेजोमय ज्योतिस्वरूप ब्रह्म का ध्यान किया जाता है। इसमें सूक्ष्म ध्यान वह है जिसमें बिन्दुमय कुण्डलिनी शक्ति का ध्यान किया जाता है। कुण्डलिनी शक्ति रीढ़ की हड्डी के सबसे नीचे भाग में साढ़े तीन फीट लपेटे लिए हुए अपनी शान्त मुद्रा में सोई रहती है। यह बहुत सूक्ष्म है। योग द्वारा ही इस सोई हुए कुण्डलिनी शक्ति को जाग्रत किया जा सकता है।

**शाण्डिल्योपनिषद्** में ध्यान के दो प्रकारों का वर्णन किया गया है—प्रथम सगुण ध्यान जिसमें ईष्ट या मूर्ति का ध्यान है। इस ध्यान से मात्र सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं। द्वितीय निर्गुण ध्यान जिसका आत्मा में ध्यान किया जाता है। आत्मा में ध्यान के द्वारा समाधि की प्राप्ति होती है।

वशिष्ट संहिता में ध्यान का वर्णन इस प्रकार से है—

‘ध्यानमात्मस्वरूप वेदनं मनसा भवेद्।  
तदेव द्विविधं प्रोक्तं सगुणं निर्गुणं तथा।।’

(वशिष्ट संहिता, 4/19)

अर्थात् निज स्वरूप को मन से तत्त्वतः समझ लेना ही ध्यान है। वह दो प्रकार का होता है प्रथम सगुण ध्यान जिसमें साकार ईष्ट या मूर्ति का ध्यान है। द्वितीय निर्गुण ध्यान जिसमें निर्गुण निराकार ब्रह्म का ध्यान है।

भक्ति सागर के अनुसार ध्यान चार प्रकार का होता है। प्रथम **पदस्थ ध्यान** जिसमें किसी भी अराध्य की मूर्ति या अपने देवता का नख से लेकर शिख तक ध्यान किया जाता है। इसके पश्चात् ध्यान को अपने ईष्ट के चरणों में केन्द्रित करके कुम्भक लगाकर ओऽम् का उच्चारण व जप किया जाता है। ऐसा करने से मन निश्चल हो जाता है, तथा इसे त्रिताप तीनों प्रकार के दुःखों (दैहिक, दैविक, भौतिक) से मुक्ति मिलती है। द्वितीय **पिङ्गस्थ ध्यान** जिसमें साधक को इस ध्यान में चक्रों में ध्यान केन्द्रित करना होता है। सर्वप्रथम मूलाधार में जहाँ चार पक्तियों वाला कमल है, तथा इसका रंग लाल तथा इसके देवता गणेश है, इस पर ध्यान लगाना होता है। इसके पश्चात् क्रमानुसार सभी चक्रों पर ध्यान केन्द्रित करना होता है। जैसे सर्वप्रथम मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपूर, अनाहत चक्र, विशुद्धि चक्र एवं आज्ञा चक्र पर ध्यान केन्द्रित करने से साधक को अलौकिक ज्योति के दर्शन होते हैं। जिसमें उसे अपने पूर्व जन्म का ज्ञान प्राप्त हो जाता है। तत्पश्चात् साधक हजार पत्तियों वाले शून्य (सहस्रत्रार चक्र) में ध्यान लगाता है। सहस्रत्रार चक्र में ध्यान के फलस्वरूप उसे अमरत्व की प्राप्ति होती है। यह ध्यान की सर्वोत्तम विधि है। तृतीय **रूपस्थ ध्यान** जिसमें साधक अपने ध्यान को भूमध्य में स्थिर रख कर विभिन्न प्रकार के दृश्यों के दर्शन करता है। सर्वप्रथम उसे अग्नि का गोला दिखाई देता है। उसके पश्चात् साधक को दीपक व तारों के समूह के दर्शन होते हैं, तथा बिजली की चमक महसूस होती है। इसके पश्चात् अनेकों चन्द्रमा व सूर्य के दर्शन होने लगते हैं तथा इनसे समस्त विश्व प्रकाशवान दिखाई देता है। इस प्रकार के ध्यान के पश्चात् साधक को चारों ओर प्रकाश ही प्रकाश दिखाई देता है। चतुर्थ **रूपाति ध्यान** जिसमें सभी प्रकार के ध्यान से सर्वश्रेष्ठ ध्यान है। रूपाति ध्यान में निराकार ब्रह्म, जिसका कोई आकार नहीं है, ऐसे निराकार ब्रह्म में अपना ध्यान साधक लगाता है। जिससे साधक का चित्त एकाग्र हो कर ब्रह्म में लीन हो जाता है। **रूपाति ध्यान**, ध्यान की अन्तिम अवस्था है, तथा यह ध्यान समाधि की प्रारम्भिक अवस्था है। इस प्रकार ध्यान द्वारा अन्तर्मन को जाग्रत कर स्वयं को जाना जा सकता है। स्वयं को जान कर स्वयं को अनुशासित तथा नियन्त्रित किया जाता है।

#### बोध प्रश्न—1

1. निम्नलिखित प्रश्नों के ठीक उत्तरों पर सही (✓) का चिन्ह लगाइये।

I. धारणा का प्रयोग कितने प्रकार से होता है। (दो/चार)

II. नाभिचक्र आदि स्थानों में चित्तवृत्ति की एकाग्रता क्या है। (धारणा/ध्यान)

III. घेरण्डसंहिता में ध्यान के कितने प्रकार बताये गये हैं। (तीन/पाँच)

2. रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए।

I. ध्यान की अन्तिम अवस्था..... है। (रूपाति ध्यान/रूपस्थ ध्यान)

II. रूपस्थ ध्यान .....होता है। (भूमध्य में /नाभि में)

बोध प्रश्न-2

1. धारणा को स्पष्ट कीजिए।

.....

.....

.....

.....

.....

2. धारणा के प्रयोग प्रकार को स्पष्ट कीजिए।

.....

.....

.....

.....

.....

3. घेरण्ड संहिता के प्रकारों को स्पष्ट कीजिए।

.....

.....

.....

.....

.....

अभ्यास प्रश्न 1

महर्षि पतञ्जलि प्रतिपादित ध्यान, धारणा विषय को स्पष्ट कीजिए।

---

**15.5 सारांश**

---

प्रत्याहार द्वारा इन्द्रियों को संयमित करने की तथा अन्तर्मुखी करने की प्रक्रिया है। तथा मानसिक शक्तियों का जागरण भी प्रत्याहार द्वारा होता है। धारणा द्वारा उन जाग्रत मानसिक शक्तियों को सही दिशा देना है। धारणा सही दिशा व एकाग्र करने की प्रक्रिया है। इसके अतिरिक्त जब धारणा का अभ्यास हो जाये तब ध्यान की अवस्था प्राप्त होती है जो कि स्वयं होने वाली प्रक्रिया है। इस प्रकार **इकाई-15 विभूतिपाद में प्रतिपादित धारणा, ध्यान विषयक अवधारणा का निरूपण** में धारणा का लक्षण तथा स्थान, धारणा के प्रकार, बाहर के देश में धारणा के प्रयोग एवं ध्यान का स्वरूप विषयक अवधारणा का अध्ययन किया गया।

## 15.6 शब्दावली

अन्तर्मुखी	—	आन्तरिक अंगों का ध्यान
कैवल्य	—	मोक्ष
निर्मल	—	पवित्र
विभूति	—	ऐश्वर्य
चित्त	—	मन
वृत्ति	—	विचार

## 15.7 कुछ उपयोगी पुस्तकें

- पातंजल योगदर्शन भाष्यम्, राजवीर शास्त्री, आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट दिल्ली 2005
- अन्तर्जगत् की यात्रा का ज्ञानविज्ञान भाग2, पाड्या प्रणव, वेदमाता, गायत्री ट्रस्ट शांतिकुंज, हरिद्वार, 2011
- योगदर्शन, दशौरा नन्द लाल, 2006
- सांख्य दर्शन एवं योगदर्शन भाष्यम्, श्रीराम शर्मा, वेदमाता, गायत्री ट्रस्ट शांतिकुंज, हरिद्वार 1982
- वेदों में योग विद्या, दिव्यानन्दसरस्वती, यौगिक शोध संस्थान, योगधाम ज्वालापुर हरिद्वार, 1999
- पातंजल योगसूत्र, करंबेलकर, कैवल्यधाम पु. वि., 1989
- योग विज्ञान, पूर्णचन्द्र पत्र शास्त्री नाहन हिमाचल प्रदेश 2002

## 15.8 बोध प्रश्न/उत्तर

### बोध प्रश्न-1

1. (i) दो (ii) ध्यान (iii) तीन
2. (i) रूपाति ध्यान (ii) भ्रूमध्य

### बोध प्रश्न-2

1. महर्षि पतंजलि ने कहा है कि—‘देशबन्धश्चित्तस्य धारणा’ (योगसूत्र 3/1) अर्थात् किसी एक देश में चित्त को ठहराना ही धारणा है। कहने का आशय यह है कि चित्त का, नाभिचक्र, हृदयकमल, मस्तक में स्थित प्रकाश पुंज, नासिका तथा जिह्वा के अग्रभाग आदि स्थानों में अथवा प्रतिमा आदि बाह्य विषयों में, स्थिर होकर दृढ़ता के साथ लगना अर्थात् बँधना ही धारणा है। धारणा योग की असली कुंजी है। कहने का आशय यह है कि जब किसी देश विशेष में वृत्तिमात्र ज्ञान मात्र से चित्त को बाँधना, रोकना, स्थिर करना ‘धारणा’ है। धारणा के दो स्थान हैं प्रथम आन्तरिक और दूसरा बाह्य। नाभि, हृदय, नासिका का अग्रभाग, मस्तक आदि आन्तरिक स्थान हैं। वृक्ष, पर्वतादि बाह्य स्थान हैं। जब योगाभ्यासी यम, नियम आदि का पालन करते-करते प्रत्याहार तक पहुँच जाता है तो मन उसके अधीन में हो जाता है। मन के अधिकार में हो जाने से साधक अपनी इच्छानुसार जहाँ पर मन को स्थिर करना चाहता है। वहाँ पर स्थिर कर लेता है।

2. **धारणा के प्रयोग प्रकार**—धारणा का प्रयोग दो प्रकार से होता है प्रथम ईश्वर की स्तुति, प्रार्थना और उपासना करने के लिए और दूसरा किसी पदार्थ के स्वरूप को जानने के लिए है। जब प्रातः काल और सायंकाल ईश्वर की उपासना की जाती है तब हृदय आदि प्रदेश में चित्त को स्थिर करके की जाती है, इस स्थिति में धारणा का स्थान शरीर का एक अंग है। उसमें चित्त को स्थिर करके ईश्वर का ध्यान किया जाता है। इस स्थिति में ईश्वर उपास्य है और जीवात्मा उसका उपासक है। जब साधक अपने स्वरूप को जानने के लिये शरीर के हृदय आदि अंग में धारणा और ध्यान करता है तो इस स्थिति में उपास्य उपासक भाव नहीं है। जब साधक अपने शरीर के विषय में विशेष रूप से जानना चाहता है तब शरीर के ही हृदय आदि अंग में धारणा और ध्यान के माध्यम से उसके स्वरूप को जान लेता है। ईश्वर की उपासना के लिए और किसी अन्य पदार्थ के स्वरूप को जानने के लिए धारणा का प्रयोग किया जाता है। योग की उँची अवस्था में सीधे ही ईश्वर, जीव आदि में दोनों कार्य अर्थात् धारणा और ध्यान किये जा सकते हैं।

**बाहर के देश में धारणा का प्रयोग**—कोई व्यक्ति किसी वृक्ष के स्वरूप को जानने के लिए अपने चित्त को वृक्ष के किसी भाग में स्थिर करके उसके स्वरूप को जानना चाहता है। यह बाह्य देश में धारणा का प्रयोग है। जो बाहर के देश में धारणा की जाती है वह ईश्वरोपासना के लिए नहीं है। यद्यपि ईश्वर सर्वव्यापक है फिर भी जीवात्मा शरीर से बाहर ईश्वर के साथ सम्बन्ध नहीं जोड़ सकता, इसलिए ईश्वर की उपासना अपने शरीर एवं आत्मा में होती है बाहर नहीं।

3. **घेरण्ड संहिता के अनुसार**—

घेरण्ड संहिता में ध्यान के तीन प्रकार बताये गये हैं—

“स्थूलं ज्योतिस्तथासूक्ष्मं ध्यानस्य त्रिविधं बिन्दुः।

स्थूलं मूर्तिमयं प्रोक्तं ज्योतिस्तेजोमयं तथा

सूक्ष्मं, बिन्दुमयं ब्रह्म कुण्डली परदेवता।।

(घेरण्ड संहिता, 6/1)

स्थूल ध्यान, ज्योति ध्यान और सूक्ष्म ध्यान के भेद से ध्यान तीन प्रकार का होता है। इसमें स्थूल ध्यान वह जिसमें मूर्तिमय ईष्टदेव का ध्यान किया जाता है। इसमें ज्योतिर्मय ध्यान वह है जिसमें तेजोमय ज्योतिस्वरूप ब्रह्म का ध्यान किया जाता है। इसमें सूक्ष्म ध्यान वह है जिसमें बिन्दुमय कुण्डलिनी शक्ति का ध्यान किया जाता है। कुण्डलिनी शक्ति रीढ़ की हड्डी के सबसे नीचे भाग में साढ़े तीन फीट लपेटे लिए हुए अपनी शान्त मुद्रा में सोई रहती है। यह बहुत सूक्ष्म है। योग द्वारा ही इस सोई हुए कुण्डलिनी शक्ति को जाग्रत किया जा सकता है।

**शाण्डिल्योपनिषद्** में ध्यान के दो प्रकारों का वर्णन किया गया है—प्रथम सगुण ध्यान जिसमें ईष्ट या मूर्ति का ध्यान है। इस ध्यान से मात्र सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं। द्वितीय निर्गुण ध्यान जिसका आत्मा में ध्यान किया जाता है। आत्मा में ध्यान के द्वारा समाधि की प्राप्ति होती है।

वशिष्ट संहिता में ध्यान का वर्णन इस प्रकार से है—

‘ध्यानमात्मस्वरूप वेदनं मनसा भवेद् ।  
तदेव द्विविधं प्रोक्तं सगुण निर्गुणं तथा ।।’

(वशिष्ट संहिता, 4 / 19)

विभूतिपाद में  
प्रतिपादित धारणा,  
ध्यान विषयक  
अवधारणा का निरूपण

अर्थात् निज स्वरूप को मन से तत्त्वतः समझ लेना ही ध्यान है। वह दो प्रकार का होता है प्रथम सगुण ध्यान जिसमें साकार इष्ट या मूर्ति का ध्यान है। द्वितीय निर्गुण ध्यान जिसमें निर्गुण निराकार ब्रह्म का ध्यान है।

भक्ति सागर के अनुसार ध्यान चार प्रकार का होता है। प्रथम **पदस्थ ध्यान** जिसमें किसी भी अराध्य की मूर्ति या अपने देवता का नख से लेकर शिख तक ध्यान किया जाता है। इसके पश्चात् ध्यान को अपने ईष्ट के चरणों में केन्द्रित करके कुम्भक लगाकर ओम् का उच्चारण व जप किया जाता है। ऐसा करने से मन निश्चल हो जाता है, तथा इसे त्रिताप तीनों प्रकार के दुःखों (दैहिक, दैविक, भौतिक) से मुक्ति मिलती है। द्वितीय **पिंडस्थ ध्यान** जिसमें साधक को इस ध्यान में चक्रों में ध्यान केन्द्रित करना होता है। सर्वप्रथम मूलाधार में जहा चार पक्तियों वाला कमल है, तथा इसका रंग लाल तथा इसके देवता गणेश हैं, इस पर ध्यान लगाना होता है। इसके पश्चात् क्रमानुसार सभी चक्रों पर ध्यान केन्द्रित करना होता है। जैसे सर्वप्रथम मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपूर, अनाहत चक्र, विशुद्धि चक्र एवं आज्ञा चक्र पर ध्यान केन्द्रित करने से साधक को अलौकिक ज्योति के दर्शन होते हैं। जिसमें उसे अपने पूर्व जन्म का ज्ञान प्राप्त हो जाता है। तत्पश्चात् साधक हजार पत्तियों वाले शून्य (सहस्रार चक्र) में ध्यान लगाता है। सहस्रार चक्र में ध्यान के फलस्वरूप उसे अमरत्व की प्राप्ति होती है। यह ध्यान की सर्वोत्तम विधि है। तृतीय **रूपस्थ ध्यान** जिसमें साधक अपने ध्यान को भूमध्य में स्थिर रख कर विभिन्न प्रकार के दृश्यों के दर्शन करता है। सर्वप्रथम उसे अग्नि का गोला दिखाई देता है। उसके पश्चात् साधक को दीपक व तारों के समूह के दर्शन होते हैं, तथा बिजली की चमक महसूस होती है। इसके पश्चात् अनेकों चन्द्रमा व सूर्य के दर्शन होने लगते हैं तथा इनसे समस्त विश्व प्रकाशवान दिखाई देता है। इस प्रकार के ध्यान के पश्चात् साधक को चारों ओर प्रकाश ही प्रकाश दिखाई देता है। चतुर्थ **रूपाति ध्यान** जिसमें सभी प्रकार के ध्यान से सर्वश्रेष्ठ ध्यान है। रूपाति ध्यान में निराकार ब्रह्म, जिसका कोई आकार नहीं है, ऐसे निराकार ब्रह्म में अपना ध्यान साधक लगाता है। जिससे साधक का चित्त एकाग्र होकर ब्रह्म में लीन हो जाता है। **रूपाति ध्यान**, ध्यान की अन्तिम अवस्था है, तथा यह ध्यान समाधि की प्रारम्भिक अवस्था है। इस प्रकार ध्यान द्वारा अन्तर्मन को जाग्रत कर स्वयं को जाना जा सकता है। स्वयं को जान कर स्वयं को अनुशासित तथा नियन्त्रित किया जाता है।

**अभ्यास प्रश्न—**

इस प्रश्न का उत्तर विद्यार्थी स्वयं लिखें।